मूल्य : १०.०० रूपये

तित्थयर

वर्ष : ३४ अंक : ०१ अप्रेल २०१०

॥ जैन भवन ॥

श्रुत देवता

Courtesy :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट
अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा
कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़
सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३४ अंक - ०१ अप्रैल २०१०

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें —
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 2000.00,

Published by Smt. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा,

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	श्रमण संस्कृति की शलाका भूमि- पूर्वी भारत	डॉ. लता बोथरा	७

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

भगवान महावीर : लछवाड़

परसमयतिमिरतरणिं, भवसागरवारितरणवर।
तरणिम्। रागपरागसमीरं, वंदे देवं महावीरम्।।

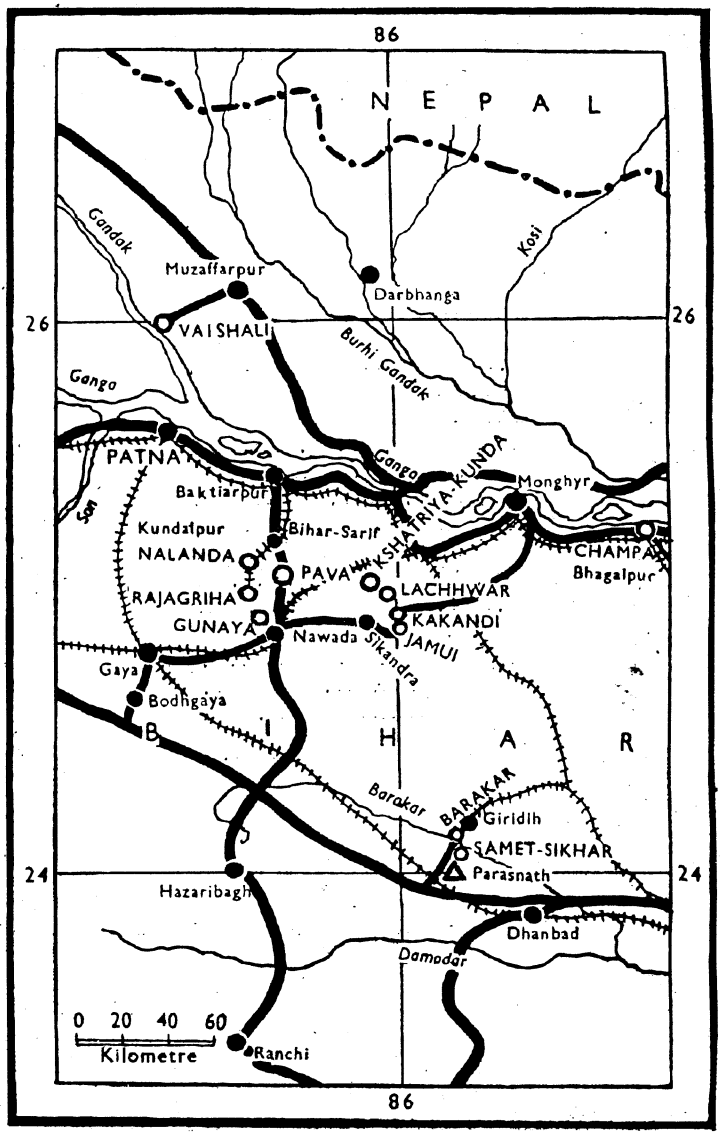
86
NEPAL
Gandak
Kosi
Muzaffarpur
Darbhanga
26
VAISHALI
Burhi Gandak
Ganga
PATNA
Ganga
Monghyr
Baktiarpur
Son
Kundalpur
Bihar-Sarif
KSHATRIYA-KUNDA
NALANDA
PAVA
CHAMPA
Bhagalpur
RAJAGRIHA
LACHHWAR
GUNAYA
Nawada
KAKANDI
JAMUI
Sikandra
Gaya
Bodhgaya
B I H A R
Barakar
BARAKAR
Giridih
SAMET-SIKHAR
24
Parasnath
Hazaribagh
Dhanbad
Damodar
0 20 40 60
Kilometre
Ranchi
86

बिहार के जैन तीर्थ

श्रमण संस्कृति की शलाका भूमि पूर्वी भारत

नास्ताम् कदाचि दुपयासिन राहुगम्यः
स्पष्टिकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।

नाम्भोधरोधर-निरूद्ध-महाप्रभावः
सूर्यातिशायि-महिमाऽसि मुनीन्द्रलोक।।

प्राची दिशा से सूर्य प्रतिदिन उदित होकर सारे जगत को आलोकित करता है; लेकिन उसका यह प्रकाश सीमित क्षेत्र में होता है, कभी राहू से ग्रसित होता है, कहीं बादलों में ढँक जाता है परन्तु तीर्थंकरों के ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश को कोई भी पदार्थ अवरुद्ध नहीं कर सकता है। उनका ज्ञानरूपी सूर्य तीनों लोकों के सभी पदार्थों को तीनों कालों में एक साथ प्रकाशित करता है। एक बार डॉ. एनी वेसेन्ट से किसी जिज्ञासु ने पूछा कि क्या आप बताएंगी कि विश्व के पुराने और नये देशों में भारत का क्या वैशिष्ट्य है? जवाब में उन्होंने कहा- "भगवान ने भारत को जो दिया है वह किसी भी देश को नहीं दिया, किन्तु जो दूसरे देशों को दिया है वह सब भारत को दिया है। परमेश्वर ने यूनान को सौन्दर्य, रोम को विधि, इजराईल को मजहब और भारत को एक ऐसा धर्म प्रदान किया है जिसमें समस्त सृष्टि का योगक्षेम और प्राणी मात्र को धारण करने की शक्ति है। वास्तव में यदि हम देखे तो भारत के पास ऐसा तत्त्वज्ञान का दर्शन है" जिसमें समस्त जड़ और चेतन निहित है और यह तत्त्वज्ञान हमें हमारे तीर्थंकरों के दिव्य ज्ञान से प्राप्त हुआ है। जिन्होंने तप, त्याग और साधना द्वारा कवलज्ञान

अर्जन किया और सर्वज्ञ बनने के बाद जिन सनातन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उन्हीं के कारण आज भी भारत को वैचारिक क्षेत्र में दुनियां में सबसे महान माना जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के केवल ज्ञान के विषय में उनके शिष्य सुधर्मा स्वामी से जम्बू स्वामी ने पूछा कि भगवान महावीर स्वामी का ज्ञान दर्शन कैसा था, उनका आचार कैसा था, आप इस विषय में यथातथ्य जानते थे और सुना भी है अतः कृपा कर बताइए? जवाब में सुधर्मा स्वामी ने कहा— "हे जम्बू, भगवान महावीर स्वामी संसारी जीवों के दुःखों को जानने में कुशल थे। वे महायशस्वी भगवान, अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी और महान ऋषि थे। उनको अर्हन्त दशा में सूक्ष्म पदार्थ भी आँखों के समान देखने वाला जानो और उनके धर्म तथा संयम की दृढ़ता को विचारो।"

"उन केवलज्ञानी भगवान ने ऊंची-नीची और तिरछी दिशा में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनको नित्य और अनित्य रूप से जानकर उनके आधार के लिये धर्म रूपी द्वीप का सम्यक् रूप से प्रतिपादन किया।"

"वे सर्वदर्शी भगवान, अप्रतिहत केवलज्ञान वाले और निर्दोष चारित्र वाले थे, वे परम धीर प्रभु अपनी आत्मा में स्थिर, परिग्रह से रहित, निर्भय, आयु रहित और समस्त पदार्थों के उत्कृष्ट ज्ञाता थे।"

"वे महान बुद्धिमान प्रभु, अप्रतिबद्ध विहारी, संसार समुद्र से तिराने वाले, परम वीर, और अनन्त ज्ञानवान थे। वे सूर्य एवं वैरोचन अग्नि की तरह अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करके ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे।"

भगवान महावीर की सर्वज्ञता के विषय में बौद्ध ग्रन्थ मज्झि मनिकाय भाग 1 पृष्ठ 62/63 में लिखा है **"निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र सर्वज्ञ और**

सर्वदर्शी है, वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं। चलते, ठहरते, सोते, जागते समस्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है।"

तीर्थंकरों के इसी ज्ञान के प्रकाश से प्राच्यभूमि इतिहासातीत काल से सदियों तक प्रज्वलित रही। पौरविक भारत की इस गौरवमय ऐतिहासिक परम्परा को जानना और उसे पुनः स्थापित एवं प्रतिष्ठित करना ही मेरा ध्येय है।

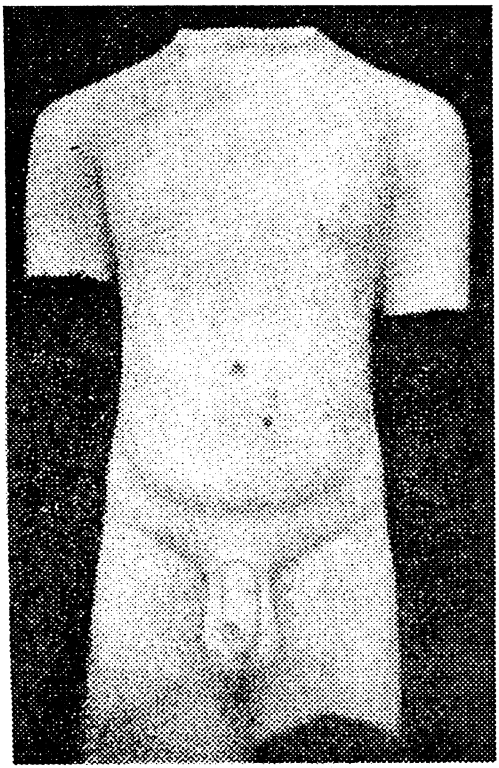

तीर्थंकर, लोहानीपुर, बिहार, ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी

अथर्ववेद में व्रात्यों का प्रियधाम प्राची दिशा को बताया गया है-

प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यं दिशि।

—अथर्ववेद 15।2।1।5

श्रमण संस्कृति में व्रत धारण कर सदाचार के मार्ग पर चलने के कारण श्रमणों को व्रात्य कहा गया है। इस धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा के प्रस्तोता जितेन्द्रिय होने के कारण जिन, जिनेन्द्र, या जिनेश्वर, समस्त पूज्य गुणों से युक्त होने के कारण अर्हत्, निरन्तर योगपूर्वक साधना करते हुए कैवल्य प्राप्त करने के कारण वातरशना, समस्त अंतरंग और बहिरंग से मुक्त होने से निर्ग्रन्थ, सम्पूर्ण समत्व के साधक और उद्घोषक होने के कारण समन, स्वेच्छा एवं श्रमपूर्वक तप-त्याग-संयम का मार्ग अपनाने के कारण श्रमण, संसार को दुःखरूप जान और मानकर उससे पार होने के लिये धर्मरूपी तीर्थ का उद्घाटन करने के कारण तीर्थंकर, रागद्वेष रूपी आंतरिक शत्रुओं पर विजय पाने के कारण अरिहंत, सब भवबीजांकुर क्षीण करने के कारण अरुहंत, चार घाती कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त करने के कारण वीतराग सर्वज्ञ कहलाते हैं। (मगध-हीरालाल दूगड़, पेज-140)

इस प्रकार ये व्रात्य ही निर्ग्रन्थ, जिन और अर्हत कहलाए। इन व्रात्यों की साधना भूमि पूर्वी भारत के मगध, अंग, बंग और कलिंग के क्षेत्र थे। यद्यपि ये लोग देश के और भागों में भी फैले हुए थे लेकिन उनकी कर्मभूमि सदियों तक पूर्वी भारत ही रही। इस क्षेत्र के ब्राह्मणों के लिये भी ब्राह्मण सूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि प्राच्य देश के ब्राह्मण वेद और याग-यज्ञ को आसानी से छोड़ देते हैं अर्थात् पतित हो जाते हैं। ज्ञातव्य है कि भगवान महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्मा स्वामी आदि मगध के प्रसिद्ध ब्राह्मण

विद्वान थे जिन्होंने निर्ग्रन्थ धर्म को अपनाया था। जैनेतर ग्रन्थों में प्राच्य देश में ब्राह्मणों का जाना निषिद्ध माना गया था क्योंकि ये श्रमण संस्कृति से प्रभावित क्षेत्र थे। उनमें यहाँ तक लिखा है कि काशी में कोई कौवा भी मरे तो सीधा वैकुण्ठ जाता है लेकिन यदि मगध में मनुष्य भी मरे तो गधे की योनि में जन्म लेता है। इससे यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वी भारत उस समय एक ऐसा आईना था जिसके सामने जाने पर व्यक्ति को अपना सही चेहरा दिखाई दे जाता था। ब्राह्मण अपने को वेद ज्ञानी मानते थे लेकिन प्राच्य भूमि में जाकर वहाँ की संस्कृति और ज्ञान के वैभव के दर्शन से उनको अपना ज्ञान उसके सामने नगण्य दिखाई पड़ता। इसीलिए आइने में वस्त्र पहने हुए भी वस्त्र विहीन दशा यानि अपने प्रकृतस्वरूप के दर्शन होने के भय से ब्राह्मणों को वहाँ जाना निषिद्ध लिखा गया। स्वर्गीय नेमिचंदजी जैन के शब्दों में— **"अंग, बंग, मगध, उत्कल को छोड़ जो आर्य थे, उनमें वस्तुतः धर्म की रागात्मक छवि का ही विकास अधिक हुआ था, उसका चिन्तनात्मक / ज्ञानात्मक / दार्शनिक पक्ष उनमें पूरी तरह खुल / उघड़ नहीं पाया। जिसे हम धर्म का चिन्तन-पक्ष कहते हैं, उसका पटोत्थान मुख्यतः मगध, बंग, उत्कल में ही हो सका। व्रात्यों को लेकर आर्यों का जो दृष्टिकोण था, वह भी अतिरंजित / पूर्वाग्रहयुक्त था। यह भ्रम कि ब्राह्मण ही अध्ययन, मनन, चिन्तन का अधिकारी है, मगध / विदेह की धरा पर ही मिथ्या साबित हुआ और लड़खड़ा कर ध्वस्त हो गया। यहाँ यह सिद्ध हो सका कि क्षत्रिय भी अध्यात्म के प्राज्ञ वेत्ता हैं / हो सकते हैं, बल्कि इससे कहीं अधिक, जितने तत्कालीन ब्राह्मण थे। इन्द्रभूति आदि का महावीर के अनेकान्तात्मक प्रतिपादन के प्रति नतशीश होना इसी का ज्वलन्त प्रमाण है।"** इसीलिए वैदिक ब्राह्मणों का रुख इस क्षेत्र के निवासियों के प्रति शत्रुतापूर्ण था। ऋग्वेद में वर्णन है कि "ऋषियों के प्रति द्वेष रखने वालों को अपना शत्रु समझो, जो वेद से भिन्न व्रत वाले हैं दण्डित हो, यज्ञ परायण को यज्ञहीनों का धन प्राप्त हो।"

ये प्राच्य भूमि के निवासी कौन थे इस विषय में— ऋग्वेद का अध्ययन करने पर एक विशेष जाति के विषय में पता चलता है जो हिरण्य और मणि द्वारा शोभायमान थी। व्यवसाय में दक्ष, "जो रूप और सन्तान पर गर्व करती है, जो धनी है, जो खाने-पीने में रूचिसम्पन्न है, जो धन की खोज में सामुद्रिक यात्रा करते हैं, लेकिन वे इन्द्र को नहीं मानते, जो देवहीन थे, यज्ञोविहीन थे, जो देव निन्दक थे, जो ऋषियों को दान नहीं देते, जिनका दर्शन भी देवविहीन है।" इस जाति को पणि के नाम से अलंकृत किया गया है। इन समृद्धशाली पणियों से ही सम्भवतः हमारी प्राचीन मुद्रा का नाम पण एवं वाणिज्य संसार का नाम पण्य हुआ। भारतवर्ष में प्राचीन युग से मुद्रा धातु के निर्माण के लिए आवश्यक ताम्र धातु सम्पदा इन पणियों के अधिकार में थी एवं भारतवर्ष की तत्कालीन अर्थ व्यवस्था में इनकी मुद्राओं का अत्यधिक महत्व था। साधारणतः धातु सम्पन्न लोग हमेशा ही कृषि पर आश्रित लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध एवं सम्पन्न होते हैं। ऋग्वेद में इन्हें सप्तसिन्धु के अंचलों के पार प्राच्य देश का निवासी बताया है और इनको वश में करने के लिये सुक्तियों की रचना की गयी। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद की रचना के पूर्व में ही पूर्वी भारत में एक उन्नतिशील सभ्यता निवास करती थी जो यज्ञ और हिंसा विरोधी थी और प्राचीन निर्ग्रन्थ धर्म से अभिन्न थी। (ऋग्वेद 6।61।1, 1।36।16, 1।39।10, 1।176।4, 1।175।3, 1।33।5, 2।26।1, 5।20।2, 2।23।8, 6।61।1)

चन्द्रगुप्त के समय यूनानी राजदूत मैगस्थनीज भारत आया था। वह चन्द्रगुप्त के दरबार में भी रहा उसने प्राच्य निवासियों के गुणों का वर्णन अपनी किताब 'इन्डिका' में किया है— Megasthenes gives a vivid description of the qualities of the Prasii people, they may be sampled as follows :-

"All the Indians are free and none of them is a slave. They do not even use aliens as slaves and much less a country man of their own.

They live frugally. They observe good order. Theft is a very rare occurrence. Their manners are simple. They have no suits about pledges or deposits. They confide in each other. Their houses and property they generally leave unguarded. They possess good, sober sense."

मैगस्थनीज के इन वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि प्राच्य निवासियों की सभ्यता बहुत ही सुसंस्कृत, सुसंगठित और उच्चकोटि की थी। शायद इसीलिए ईर्ष्या के कारण ब्राह्मणों ने इन्हें अनार्य और असुर कहकर संबोधित किया है।

"All the Prachyas were considered by the Brahmanas as Asuras, the non-Aryan Bharatiya people. It was very difficult to establish the Brahmanic Yagnic way of life in these Prachya Asura regions. The concept Prachya, in the age of Megasthenes referred to the whole of the eastern Bharata. These Prachyas were anti-Brahmanical people." (Ancient India)

यहाँ ब्राह्मणों से तात्पर्य पतित ब्राह्मणों से है। ब्राह्मणों के स्वरूप के विषय में उत्तराध्ययन सूत्र के पच्चीसवें अध्याय में लिखा है कि "जिन्हें कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो स्वजनादि में आसक्त नहीं होता और प्रवजित होने में सोचता नहीं है, जो राग, द्वेष और भय आदि से रहित है, जो त्रस और स्थावर प्राणियों को संक्षेप या विस्तार से जानकर त्रिकरण त्रियोग से हिंसा नहीं करता, जो क्रोध से, लोभ से,

हास्य से और भय से झूठ नहीं बोलता, जो काम भोगों से अलिप्त है वहीं वास्तव में ब्राह्मण है।" आगे लिखा है कि—

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो।।31

केवल सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता, न ॐ कार बोलने से ब्राह्मण होता है, अरण्य में बसने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता और न वल्कलादि पहिनने से कोई तापस हो सकता है।

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ, तवेण होइ तावसो।।32

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है।

इस प्राच्य भू-भाग में मगध, विदेह, अंग, बंग और कलिंग आदि प्रमुख जनपद थे। यहाँ के निवासी वैदिक ब्राह्मणों से प्रथक वातरशना मुनि, अर्हत, व्रात्य, निर्ग्रन्थ और श्रमण तीर्थंकरों की परम्परा के उपासक थे। जहाँ तक हमारा इतिहास जाता है उससे पूर्व काल से इस प्राच्य भूमि में नाग, यक्ष, वज्जि, लिच्छवी, ज्ञात, मल्ल, मोर्य, आदि अनार्य जातियों की सभ्यता सम्पोषि ; और पल्लवित हुई थी। यहाँ की संस्कृति ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, कला और कौशल आदि की दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की थी। इस सांस्कृतिक परम्परा के प्रवर्तक और संवाहक तीर्थंकर रहे थे।

इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए हैं इनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण तिब्बत में अष्टापद पर और बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमीनाथ जी का निर्वाण गुजरात भूमि के गिरनार पर्वत पर हुआ था। जबकि अन्य बाईस तीर्थंकरों का निर्वाण प्राच्य भूमि के बिहार प्रान्त में हुआ था। कल्पसूत्र के अनुसार बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्यजी का

निवाण चम्पापुर (अंग जनपद) में हुआ था। अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर का पावापुरी में और शेष बीस तीर्थंकरों का निर्वाण सम्मेत शिखर में हुआ जो मगध जनपद के हजारीबाग जिले में है। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाम से सम्मेत शिखर को पार्श्वनाथ पर्वत भी कहा जाता है। रविषेणाचार्य ने अपने पद्मपुराण में हनुमान जी का निर्वाण स्थान इसी पर्वत पर हुआ था उल्लेख किया है। वर्धमान कवि ने अपने दशभक्तयादि महाशास्त्र में रामचन्द्रजी का निर्वाण स्थान भी इसी पर्वत पर बतलाया है। बंगाल की सेंसस रिर्पोट 457 पेज 110 में उल्लेख है कि प्राचीन काल में पारसनाथ हिल के समीप जैनियों की बहुत बड़ी बस्ती थी। अतः यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यहाँ पर श्रमण धर्म का उद्भव तथा विकास श्रेणिक बिम्बिसार के शासन काल से बहुत पहले हो चुका था। भगवान महावीर के उपरांत काल में भी श्रमण-श्रमणियों का इस प्रदेश में सतत विहार (आवागमन) होते रहने से यह प्रदेश बिहार नाम से प्रसिद्ध हुआ। ई. पूर्व सातवीं शताब्दी में विहार में तीन प्रमुख जनपद थे—

1. मगध जिसकी राजधानी राजगृह, 2. विदेह जिसकी राजधानी वैशाली और 3. अंग जनपद जिसकी राजधानी चंपा थी।

मगध : प्रज्ञापनासूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र और स्थानांगसूत्र में मगध को आर्य जनपद कहा गया है। ऋग्वेद संसार की सबसे प्राचीनतम साहित्यिक रचना है। पूर्वी भारत के विषय में ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से नाम का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन वहाँ मगध को कीकटों का देश लिखा है जहाँ पर गायें पर्याप्त दूध नहीं देती न उनका दूध सोमरस के साथ मिलता है। 'हे मागवन तू प्रमगन्ध के सोमलता वाले देश को भली-भाँति हमारे हुँकार से भर दो।'

किं ते कृण्वन्ति कीकटेपु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः

ऋग्वेद, 3।53।14

यास्क ने अपने निरुक्त 6।32 में कीकट प्रदेश को अनार्यों का निवास स्थान बताया है (कीकटो नाम देशो अनार्य निवास)।

पुराणों के अनुसार जन्हू की पीढ़ी में [illegible] और उसका भाई अमूर्तया हुआ और अमूर्तया के पुत्र गय के नाम से गया नाम का राज्य हुआ जो आगे चलकर मगध कहलाया। इसके काफी समय बाद कुरु की पाँचवीं पीढ़ी में वसु नाम का प्रतापी राजा हुआ जिसने मगध से मत्स्य देश तक अपना राज्य स्थापित किया और उसको पाँच पुत्रों में बाँट दिया। उसका एक पुत्र वृहद्रथ मगध का राजा बना जिसके नाम से ही बार्हद्रथ वंश की नीव पड़ी। बार्हद्रथ वंश में ही जरासंध नामक प्रतापी राजा हुआ जिसका उल्लेख महाभारत में तो है ही जैन ग्रन्थों में भी हमें मिलता है। उसके समय गिरि ब्रज मगध की राजधानी थी। महाभारत के समय में श्री कृष्ण ने भीम और अर्जुन के साथ इसी गिरि व्रज में प्रवेश किया था। कृष्ण ने अर्जुन को इस गिरिव्रज के वैभव के विषय में वर्णन करते हुए कहा कि— "हे पार्थ! देखो, मगध राज्य का महानगर कैसा सुशोभित है। उत्तम-उत्तम अट्टालिकाओं से सुशोभित यह महानगरी सुजला निरुपद्रवा और गवादि से पूर्ण है। वैभार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक ये पांचों शैल सम्मिलित होकर गिरिव्रज नगर की रक्षा कर रहे है।" (महाभारत, सभा.)

कनिंघम के अनुसार Kusagrapur was the original capital of Magadha which was called Rajagriha of 'Royal Residence'. It was also named Girivraja on hill surrounded which agrees with the 'Hiuen Tsang's description of it as a town surrounded by

mountains...Fa...Hien..... states that the five hills from a girdle like the walls of a town, which is an exact description of old Rajagriha or Purani Rajagir as is now called by the people.

जरासंध बड़ा प्रतापी राजा था उसने अंग, बंग, पुण्ड्र, करुस और चेरी देश को अपने प्रभावाधीन कर लिया था। आवश्यकचूर्णि में मगहसिरी गणिका का उल्लेख मिलता है जो जरासंध की गणिका थी। बार्हद्रथ वंश के बाद मगध में हर्यक वंश का शासन स्थापित हुआ जो नागवंश की ही एक शाखा थी। इसी वंश में श्रेणिक बिम्बिसार, आजाद शत्रु और उदायी प्रमुख राजा हुए। छठीं शताब्दी ई. पूर्व में मगध उत्तर पूर्वी भारत का सर्वोच्च राज्य बन गया था। मगध की समृद्धि और विकास का स्रोत उसकी धातु सम्पदा थी जिसके विषय में श्री डी. डी. कौसम्बी का कथन है–

"Magadha had something for more important : the metals, and proximity to the river..... Rajgir had the first immediate source of iron at its disposal. Secondly, it stradded (with Gaya to which the passage was through denser forest) The main route to India's heaviest deposits of iron and copper, to the south cast in the Dhalbhum and Singhbhum districts.....thus Magadha had a near monopoly over the main source of state craft, Canakya was fully aware of the importance of mining : The treasury depends upon mining, the army upon treasure (Artha 2.12) : The mine is the womb of war materials (Artha 7.....)

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि तीर्थंकर जिस क्षेत्र में जन्म लेने वाले होते हैं उस क्षेत्र की समृद्धि और विकास पहले से ही आरम्भ हो जाता है। भगवान महावीर से पूर्व ही मगध की समृद्धि का प्रारम्भ हो

चुका था और उनके समय में मगध एक महत्वपूर्ण साम्राज्य के रूप में केवल भारतीय इतिहास में ही नहीं बल्कि निर्ग्रन्थ धर्म और वैचारिक क्रान्ति का महत्वपूर्ण केन्द्रीय स्थल भी बन गया था जो अनेक उत्थान-पतन के बाद भी डेढ़ हजार वर्षों तक कायम रहा।

मगध की राजधानी राजगृह के प्राचीन नाम ऋषभपुर क्षितिप्रतिष्ठ, चणकपुर, कुशाग्रपुर रहे थे। नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ के चार कल्याणक च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान जमुई मंडल के काकन्दी में हुए थे। भगवती सूत्र के अनुसार काकन्दी में तैंतीस समणोवासग (श्रमणोपासक) का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि कभी यहाँ तैंतीस श्रावक या जैन गृहस्थ निवास करते थे। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने काकन्दी में विहार किया था। उनके कई शिष्य काकन्दी के निवासी थे। उन शिष्यों के नाम के साथ जनपद-बोधक नाम काकन्दक का उल्लेख मिलता है। काकन्दक का अर्थ है काकन्द के निवासी।

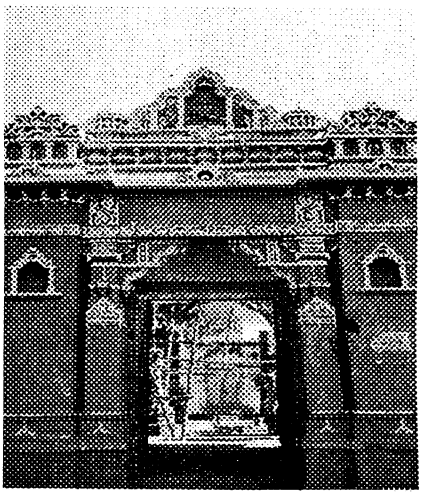

जैन मंदिर : कांकदी

जैन कल्पसूत्र की स्थविरावली में जैन श्रमणों के गण, शाखा और कुलों की एक सूची मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि व्याघ्रापत्य गोत्र के सुप्रतिबुद्ध काकन्दक ने सुस्थित कौटिक के साथ कौटिकगण नामक जैन संघ की स्थापना की थी जिसकी चार शाखाएं थी। वशिष्ठ गोत्र के मुनि गुप्त काकन्दक ने मानव गण नामक एक दूसरे जैन संघ की स्थापना की थी। उसकी भी चार शाखाएं थी। भारद्वाज गोत्र के भद्रयशस् ने उडुवाटिक नामक गण की स्थापना की थी जिसकी

चम्मिज्जिया (चम्पियिका) भद्दिज्जिया (भद्रियिका), काकन्दिया (काकन्दिका) और मेहलिज्जिया (मेखलियाका) नामक चार शाखाएं थी। इन शाखाओं के नाम जनपदों के नाम पर दिये गये है।

मुंगेर के जैन तीर्थ – रामरघुवीर।

दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ का जन्म हजारीबाग स्थित कलुहा पहाड़ी के पास हुआ। बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतस्वामी का जन्म स्थान राजगृह था। भगवती सूत्र तथा उत्तराध्ययन सूत्र से यह पता चलता है कि मगध में तेइसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का काफी प्रभाव था। भगवान महावीर के परिवारजन भी पार्श्वनाथ मत के अनुयायी थे। उनके पश्चात् महावीर के क्रियाकलापों का भी मुख्य केन्द्र मगध रहा। भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया था। भगवान महावीर ने इसमें ब्रह्मचर्य को शामिल कर पंच महाव्रतों का प्रतिपादन किया था। साधना और तपस्या का यह प्रयोग इसी मगध की भूमि पर हुआ था। भगवान महावीर के उपदेश अर्द्धमागधी में हुए जो यहाँ की प्रमुख भाषा थी। ज्यादातर इतिहासविदों का मानना है कि महावीर का जन्म स्थान मगध के जमुइ के लछवाड़ में हुआ था। वहाँ के गाँव के नाम जन संघ डिही (जैन संघ) आचारज डीही (आचार्य संघ) आदि इसकी पुष्टि करते हैं। लछवाड़ के पास महादेव सिमरिया में पाँच जिनमंदिर थे जिनकी मूर्तियाँ तालाब में डाल दी गयी और उन्हें शैव मंदिरों में परिवर्तित किया गया। लछवाड़ के मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित है वह गुप्तकाल से भी प्राचीन प्रतीत होती है। श्री अगरचंद नाहटा ने इसे पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन बताया है। उन्होंने लिखा है— "चालीस वर्ष पूर्व जब हमने प्रथम बार क्षत्रिय कुंड की यात्रा की थी तो वहाँ की धर्मशाला में भगवान महावीर की माता त्रिशला की मूर्ति, जिनके गोद में भगवान महावीर बालक रूप में दिखाये गये थे, उस पर

प्राचीन लिपि का लेख लिखा हुआ था, हमने देखी थी। खेद है कि वह मूर्ति सुरक्षित नहीं रही, पर उस पर खुदा हुआ लेख, जो हमने स्वयं देखा था, गुप्तकालीन लिपि का था।" उन्होंने वर्तमान जन्मस्थान के मंदिर से दो मील दूर लोधापानी में जंगल-झाड़ी के बीच प्राचीन खंडहर भी देखे थे।

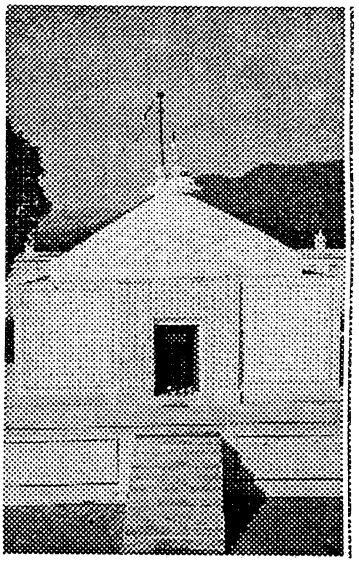
क्षत्रिय कुण्ड मंदिर

"लछवाड़ के श्री नरेन्द्रचंद मिश्र लिखते हैं– मैं क्षत्रियकुण्ड के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ प्रस्तुत करना चाहता हूँ। कल्पसूत्र में उल्लिखित क्षत्रियकुण्ड से सम्बन्धित स्थानों की प्रामाणिकता उनके शोधपूर्ण निरीक्षण से आंकी जा सकती है। वे सभी स्थल-अपने उसी नाम पर तथा कतिपय यत्किंचित अपभ्रंश के साथ अपने में तीन हजार वर्षों की गरिमा निहित किए है। क्षत्रियकुण्ड के विस्तृत भू-भाग में यत्र-तत्र मिट्टी के बड़े-बड़े स्तूपों का अगर उत्खनन हो तो प्रामाणिक इतिहास लेखन की बहुत सामग्री मिल सकती है। उदाहरण स्वरूप एक स्तूप से अनायास भगवान महावीर की मिट्टी की मूर्ति मिली है जो मेरे पास सुरक्षित है जिस पर अस्पष्ट अज्ञात लिपि भी है।"

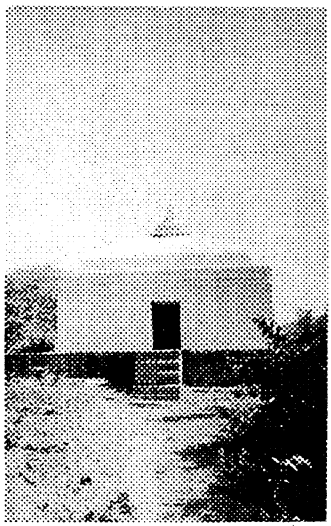
श्री खत्रीय कुण्ड : तलहटी मंदिर

(भगवान महावीर का जन्म स्थान क्षत्रियकुण्ड- भंवरलाल नाहटा)

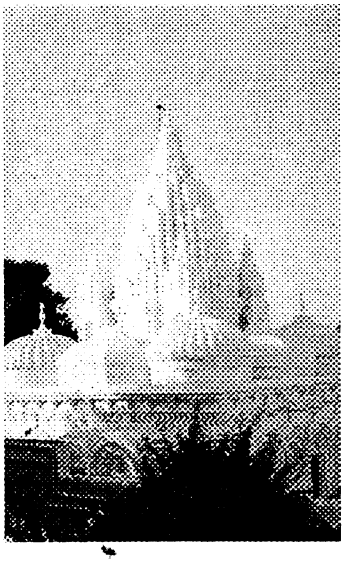

श्री लछवाड़ मंदिर

वर्तमान क्षत्रियकुण्ड अति प्राचीन स्थान है। कुण्डघाट पर नदी के दोनों तरफ दो प्राचीन मन्दिर है एवं पहाड़ी पार करने पर जन्मस्थान का मन्दिर है। जहाँ सिद्धार्थ राजा का महल था, प्राचीनकाल में क्षत्रियकुण्ड की यात्रा के लिए यात्री संघ समय-समय पर जाते रहते थे। इस प्रदेश में निवास करने वाली महत्तियाण जैन जाति इन तीर्थों की देख-रेख करती थी।

युगप्रधानाचार्य गुर्वावली एक प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथ है जिसमें चौदहवीं शताब्दी तक की घटनाएं लिखी हुई मिलती है, उसमें लिखा है कि सं. 1352 में श्री जिनचन्द्रसूरिजी के उपदेश से वाचक राजशेखर, सुबुद्धिराज, हेमतिलकगणि, पुण्यकीर्तिगणि, रत्नमन्दिर मुनि सहित श्री बड़गाँव (नालंदा) में विचरे थे। वहाँ के ठक्कर रत्नपाल सा. चाहड़ प्रधान श्रावक प्रेषित भाई हेमराज वांचू श्रावक युक्त सपरिवार सा. बोहित्थ पुत्र मूलदेव श्रावक ने श्री कौशाम्बी, वाराणसी, काकन्दी, राजगृह, पावापुरी, नालंदा, क्षत्रियकुण्डग्राम, अयोध्या, रत्नपुरादि नगरों में जिन जन्मादि पवित्र तीर्थों की यात्रा की।

सं. 1431 में अयोध्या स्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिलपुर से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित विज्ञप्ति महालेख से विदित होता है कि लोकहिताचार्यजी इतः पूर्व मंत्रिदलीय वंशोद्भव ठ. चन्द्रागज सुश्रावक राजदेव आदि के निवेदन से विहार व राजगृह में विचरे थे उस समय वहाँ कई नये जिन प्रासादों का निर्माण हुआ था। सूरिजी वहाँ से

ब्राह्मणकुंड व क्षत्रियकुण्ड जाकर यात्रा कर आये और वापस राजगृह आकर विपुलाचल व वैभारगिरि पर बिम्बादि की प्रतिष्ठा करवाई थी।

सं. 1489 में रचित श्री जिनवर्द्धनसूरि रास में उनके पाँच वर्ष पर्यन्त पूर्व देश में विचरण कर धर्म प्रभावना करने का उल्लेख है, जिसमें पावापुरी, नालन्दा, कुण्डग्राम, काकन्दी यात्रा का भी वर्णन है। श्री जिनवर्द्धनसूरिजी ने स्वयं सन् 1467 में पूरब देश चैत्यपरिपाटी की रचना की है जिसमें ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड और काकन्दी की यात्रा करने का उल्लेख किया है—

पावापुरि नालिंदा गामि, कुंडगामि कायंदीठामि
वीर जिणेसर नयर विहारि, जिणवर वंदइ सवि विस्तारि

सन् 1461-86 के बीच श्री जिनवर्द्धनसूरि कृत **पूरब देश चैत्य परिपाटी स्तवन** में लिखा है—

"सिद्ध गुणराय सिद्धत्थ कुलमंडणं, रुद्ददालिद्द दोहग्गदुह खंडणं।
बंभणकुंडपुरि थुणउ जण रंजणं, खित्तियाकुंड गामंमि वीरंजिणं।।22।।"

सुप्रसिद्ध विद्वान जयसागरोपाध्याय ने सं. 1524 में राजगृह में प्रतिष्ठादि कराये जिनके अभिलेख विद्यमान है उन्होंने वहाँ से जाकर क्षत्रियकुण्ड की भी यात्रा की थी जिसका उल्लेख सन् 1525 फा. ब. 5 जौनपुर में लिखित आवश्यक पुष्पिका व उसी संवत् में लिखित दसवैकालिक वृत्ति की प्रशस्ति में पाया जाता है।

जिनप्रभसूरि ने अपनी तीर्थमाला में **माहजखत्तिय कुण्डहगामिहि, राजगृहि पावापुर ठामहि** लिखा है। कवि हंससोम ने 1565 में, मुनि पुण्यसागर जी ने सन् 1609 में, मुनिशील विजयजी ने 1712 में, एवं मुनि सौभाग्य विजयजी ने सन् 1750 में अपनी तीर्थमाला में मगध के इन तीर्थों की यात्रा के उल्लेख किये है।

(भगवान महावीर का जन्म स्थान क्षत्रियकुण्ड- भंवरलाल नाहटा)

उत्तराध्ययन सूत्र में राजगृही में श्रेणिक राजा और अनाथी मुनि का एक आख्यान मिलता है जिससे यह परिलक्षित होता है कि राजा श्रेणिक निर्ग्रन्थ उपासक थे। यह आख्यान इस प्रकार है—

अनेक रत्नों का स्वामी और मगध देश का अधिपति श्रेणिक राजा मंडिकुक्षि नाम के उद्यान में विहार यात्रा के लिये गया।

वहाँ वृक्ष के नीचे एक साधु को बैठा हुआ देखा, वह संयमशील, समाधि युक्त सुकुमार और प्रसन्न चित्त था।

उस मुनि के अत्यन्त उत्कृष्ट रूप को देखकर राजा आश्चर्य में पड़ गया।

आश्चर्य है इसकी भव्य आकृति और सुन्दर रूप। इस आर्य पुरुष की क्षमा, निर्लोभता और भोगों से निस्पृहता आश्चर्यकारी है।

राजा उनको प्रदक्षिणा और चरणों में वन्दना करके न अति दूर और न अति निकट बैठकर हाथ जोड़कर पूछने लगा।

हे आर्य! आप तरुण अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये हैं, भोग वेला में ही संयमी हो गये हैं। इसके कारण को मैं जानना चाहता हूँ।

महाराज! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है, न कोई मुझपर कृपा करने वाला मित्र ही है, यहीं कारण आप जाने।

यह सुनकर राजा हँसने लगा, उसे आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार की ऋद्धि वाले के भी कोई नाथ नहीं है?

राजा ने कहा— हे संजती! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। आप भिन्न ज्ञाति युक्त होकर भोगों को भोगें। यह मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

हे मगधदेश के अधिपति श्रेणिक। तुम स्वयं ही अनाथ हो। स्वयं अनाथ होते हुए दूसरों के नाथ कैसे हो सकोगें।

साधु से, पहले कभी नहीं सुने ऐसे वचन सुनकर राजा विस्मित हुआ, व्याकुल हुआ, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

हे मुनि। मेरे पास हाथी, घोड़े, मनुष्य नगर और अन्तःपुर है मैं ऐश्वर्यशाली हूँ मेरी आज्ञा चलती है। मैं मनुष्य सम्बन्धी सभी भोग भोगता हूँ।

इस प्रकार प्रधान समृद्धि और सब प्रकार के काम भोग होते हुए मैं अनाथ कैसे हूँ? हे भगवन् आप झूठ नहीं बोले।

हे राजन ! तुम अनाथ शब्द के अर्थ और उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते हो कि अनाथ और सनाथ किसे कहते हैं।

हे महाराज जिस प्रकार जीव अनाथ होता है और जिस आशय से मैंने कहा है, वह एकाग्र मन से सुनो।

प्राचीन नगरियों में श्रेष्ठ कौशाम्बी नाम की नगरी है वहाँ मेरे पिता प्रभूत धन संचय रहते हैं।

राजन प्रथम (यौवन) वय में मेरी आँखों में अत्यन्त वेदना हुई, और सारे शरीर में अति जलन होने लगी।

जिस प्रकार क्रोधित शत्रु शरीर के मर्म स्थानों में बहुत ही तीखे शस्त्र घुसेड़ दे, ऐसी वेदना मेरी आँखों में होती थी।

इन्द्र का वज्र लगने से जैसी वेदना होती है वैसी घोर और महा दुःखदायी वेदना मेरी कमर, हृदय और मस्तक में हो रही थी।

मेरी चिकित्सा करने के लिये, विद्या, मन्त्र, मूल और शल्य चिकित्सा में कुशल एवं विशारद ऐसे आचार्य उपस्थित हुए थे।

मेरे हित के लिये वे वैद्याचार्य मेरी चतुष्पाद (वैद्य, औषधि, श्रद्धा और परिचारक) चिकित्सा करते थे किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके यही मेरी अनाथता है।

मेरे पिता मेरे लिये वैद्यों को सभी बहुमूल्य वस्तुएं दे रहे थे, किन्तु फिर भी मैं कष्टों से मुक्त नहीं हुआ, यही मेरी अनाथता है।

राजन पुत्र शोक से अति दुखी हुई मेरी माता ने अनेक उपाय किये किन्तु वह भी मुझे कष्टों से नहीं छुड़ा सकी, यही मेरी अनाथता है।

नरेन्द्र! मेरे छोटे बड़े सगे भाइयों ने भी अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वे भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सके, यही मेरी अनाथता है।

नरेश! मेरी छोटी बड़ी सगी बहने भी मुझे कष्टों से मुक्त नहीं कर सकी। यही मेरी अनाथता है।

महाराज मुझ पर अत्यन्त प्रेम रखने वाली और पतिव्रता मेरी पत्नी मेरे पास बैठकर अपनी आँखों के आँसुओं से मेरे हृदय को भिगोती थी। वह मेरे जानते या अजानते भी अन्न-पानी, स्नान सुगन्ध बिलेपन और माला आदि का सवन नहीं करती थी तथा एक क्षण के लिये भी मुझसे दूर नहीं होती थी, किन्तु वह भी मुझे दुःख से नहीं छुड़ा सकी, यहीं मेरी अनाथता है।

तब मैंने सोचा कि इस अनन्त संसार में मैंने ऐसी दुस्सह वेदना बार-बार सहन की है, अब एक बार भी मैं इस महा वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो क्षमावान, दमितेन्द्रिय और निरारंभी अनगार हो जाऊँ।

हे नरेन्द्र ऐसा विचार कर मैं सो गया। रात्रि बीतने के साथ मेरी वेदना भी नष्ट होती गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने बन्धुजनों से पूछकर अनगार प्रव्रज्या धारण की।

अब मैं अपना, दूसरों का भी और सभी त्रस स्थावर प्राणियों का नाथ हो गया हूँ।

मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है और आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु है और यही नन्दन वन है।

आत्मा ही सुखों और दुःखों का कर्त्ता है और यही कर्म क्षय करने वाला है। श्रेष्ठ आचार वाली आत्मा मित्र और दुराचार वाली आत्मा शत्रु है।

यह सुनकर राजा ने कहा— हे महर्षि ! आपका मनुष्य जन्म सफल है। आपने ही इसका लाभ उठाया है। आप ही सनाथ और सबान्धव है। क्योंकि आप जिनेन्द्र के सर्वोत्तम मार्ग में स्थित है।

हे महाभाग ! आप अनाथों के नाथ है। हे संयति आप सभी प्राणियों के नाथ हैं। मैं आप से क्षमा चाहता हूँ और आपसे शिक्षा पाने का इच्छुक हूँ।

मैंने, आपसे पूछकर ध्यान में विघ्न किया और भोगों को निमन्त्रण दिया, इन सब अपराधों को क्षमा प्रदान करें।

इस प्रकार राजाओं में सिंह समान श्रेणिक उन अनगार सिंह की परम भक्ति से स्तुति करके अपने अन्तःपुर, परिजन और बान्धवों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हुआ।

हर्ष से रोमांचित हुआ राजा प्रदक्षिणा करके और मस्तक झुकाकर वन्दना करके अपने स्थान को चला गया।

जैन साहित्य में उल्लेख है कि श्रेणिक राजा आने वाले उपसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर होगे।

बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग में लिखा है कि गौतम बुद्ध जब राजगृह में आये थे तब वह सुपार्श्व की बस्ती में ठहरे थे। मज्झिम निकाय में भी वर्णन है कि बुद्ध ने कहा था कि एक बार जब वह राजगृह में थे उन्होंने निर्ग्रन्थों को ऋषिगिरि पर्वत पर साधना करते हुए देखा था। मगध में

नाग क्षत्रियों की बस्ती थी और गिरि व्रज के बीच में मणिनाग नामक स्थान था जिसे मणियार मठ के नाम से आज भी जाना जाता है। विद्वानों का मानना है कि बिम्बसार ने अपनी राजधानी गिरिव्रज से हटाकर समीप ही राजगृह को राजधानी बनाया और मगध की सीमा का विस्तार किया जिसमें बंग, कलिंग इत्यादि भी शामिल थे। उसकी एक रानी चेलना लिच्छवी जनपद के प्रमुख चेटक की बहन थी और भगवान महावीर की अनुयायी।

राजगृह को 20वें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी की जन्म नगरी होने का गौरव प्राप्त है। पाँच पर्वतों में प्रथम ऋषिगिरि चतुष्कोण है और पूर्व दिशा में दूसरा वैभारगिरि जो त्रिकोणाकार है और दक्षिण दिशा में स्थित है। तीसरा विपुलाचल दक्षिण और पश्चिम दिशा के मध्य में स्थित त्रिकोण है, चौथा बलाहक पर्वत है। पाँचवें पर्वत का नाम पाण्डुक है यह गोलाकार पूर्व दिशा में स्थित है। राजगृह का वर्णन धवलाटीका, जयधवलाटीका, तिलोयपण्णति, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पद्मपुराण, महापुराण, णयकुमार चरिउ, जम्बू स्वामी चरित्र, गौतम स्वामी चरित्र, भद्रबाहुचरित्र, श्रेणिक चरित्र, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, आराधना कथाकोष पुण्यास्रवकथाकोष मुनिसुव्रतकाव्य, धर्मामृत, अणुत्तरोबाई, दशांगसूत्र, आचारांग, अंतगडदशांग, भगवती सूत्र, सूत्रकृतांग,

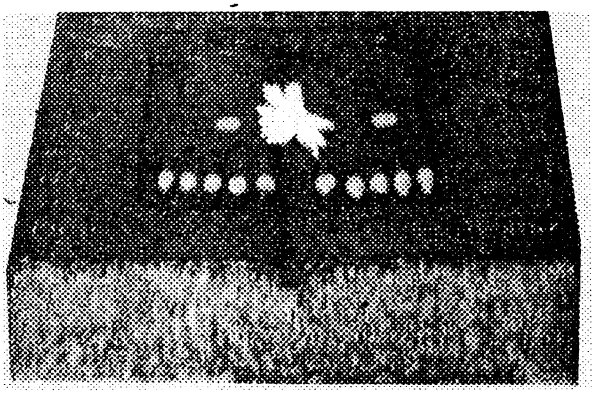

श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरण : उदयगिरि राजगृह

उत्तराध्ययन, ज्ञाताधर्म कथांग, और विविध तीर्थकल्प आदि ग्रन्थों में मिलता है।

श्रेणिक चरित्र में इस नगरका वर्णन करते हुए लिखा है- "यहाँ न अज्ञानी मनुष्य हैं और न शील रहित स्त्रियाँ। निर्धन और दुःखी व्यक्ति ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। यहाँ के पुरुष कुबेर के समान वैभववाले और स्त्रियाँ देवांगनाओं के समान दिव्य है। यहाँ कल्पवृक्ष के समान वैभववाले वृक्ष हैं। स्वर्गों के समान स्वर्णगृह शोभित है। इस नगर में धान्य भी श्रेष्ठ जाति के उत्पन्न होते हैं। यहाँ के नरनारी व्रतशीलों से युक्त हैं। यहाँ कितने ही जीव भव्य उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को दान देकर भोगभूमि के पुण्य का अर्जन करते हैं। यहाँ के मनुष्य ज्ञानी और विवेकी हैं। पूजा और दान में निरन्तर तत्पर है। कला, कौशल, शिल्प में यहाँ के व्यक्ति अतुलनीय है। जिन-मंदिर और राजप्रासाद में सर्वत्र जय-जयकी ध्वनि कर्ण-गोचर होती है।"

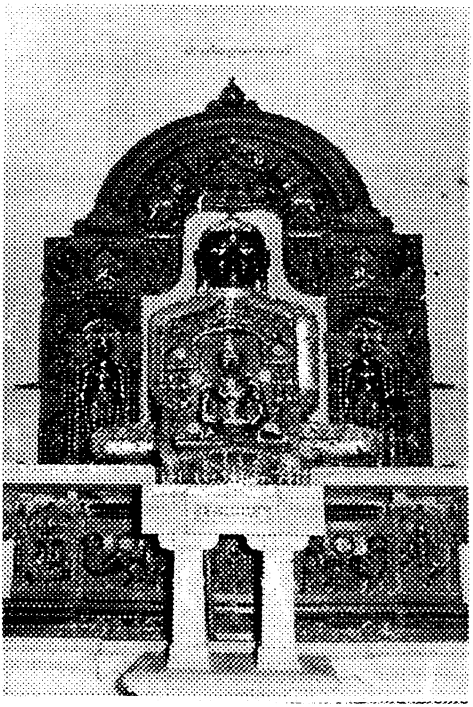

श्री मुनि सुव्रत स्वामी : राजगृह

वर्द्धमान भगवान महावीर के समय श्रेणिक बिम्बिसार मगध के सम्राट थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार राजा श्रेणिक के समय उसका

साम्राज्य अनेक तत्त्व चिंतकों का केन्द्र था। बौद्ध ग्रन्थों में छः तत्त्व चिंतकों का वर्णन हैं जो मगध के थे और इन सभी की साधना भूमि भी मगध थी। इनमें अजित केशकम्बलिन्, मंक्खली गोसालक, पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त और निगंठ नाथपुत्त (महावीर) हैं। ये सभी संकलित वेदों के विरोधी थे। अजित केशकम्बलिन् की विचारधारा को पूर्णरूप से सामने रखने का हमारे पास साधन नहीं है। पर इतना स्पष्ट है कि वह वैदिक याग-यज्ञों के विरोधी थे। वह चार महाभूतों से सृष्टि की उत्पत्ति और मृत्यु के बाद उन्हीं में लय मानता था। परलोक और उसके लिये किये जाने वाले दान पुण्य को वह झूठ समझते थे। एक जन्म के पाप-पुण्य को दूसरे जन्म में भोगने और ब्रह्मज्ञानी होने का भी वह खण्डन करता था। मंक्खली गोसालक आजीवक सम्प्रदाय का प्रमुख था। मगध से श्रावस्ती तक यह सम्प्रदाय फैला हुआ था। मंक्खली बहुत गरीब माँ-बाप का बेटा था। गोसाला में पैदा होने के कारण उसको गोसालक कहते हैं। गोसालक बहुत महत्त्वाकांक्षी भी था। इसका मत था कि जीव चौरासी लाख योनियों में चक्कर खाते-खाते परम विशुद्ध दशा में आकर तपस्वी होता है और मोक्ष पाता है। इससे पहले कोई भी प्रयत्न करके मोक्ष नहीं पा सकता। यह जीवन का रास्ता इतना नपा तुला मानता था कि उसमें अच्छे और बुरे कर्मों से कोई भी अन्तर नहीं पड़ता था। शायद इसीलिए यह संयम पर भी विशेष जोर नहीं देता था। भगवती सूत्र के अनुसार गोसालक भगवान महावीर के साधना काल में उनका शिष्य रहा था। पूर्ण काश्यप वैदिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक ब्रह्मवाद का विरोधी था। वह न परलोक मानता था, न परलोक में भोगने वाला पाप-पुण्य। इस प्रकार वह स्वर्ग की कल्पना का भी विरोधी था। प्रकुध कात्यायन हर वस्तु को अचल और नित्य मानने वाला था। वह नियतिवाद का माननेवाला

था। वह आत्मा की गति को इतना निश्चित मानता था कि उसमें अपने शुभाशुभ कर्मों द्वारा किसी प्रकार का रद्दो बदल सम्भव नहीं समझता था। संजय वेलट्ठिपुत्त संशयवादी था। एक तरह से उसका दर्शन निराशावादी था। तीर्थकर परम्परा में अंतिम 24वें तीर्थकर निर्ग्रन्थ नाथपुत्त (वर्द्धमानमहावीर) पार्श्वनाथ के उत्तराधिकारी, उनके मत के संशोधक और जैन धर्म के बहुत बड़े व्याख्याता थे। वे अपने युग के बहुत बड़े आध्यात्मिक नेता थे। इनका पारिवारिक सम्बन्ध उस काल के मध्य देश के प्रायः सभी प्रमुख राज-घरानों से था। श्रेणिक बिम्बिसार भी उनका रिश्तेदार था। बौद्ध साहित्यानुसार बुद्ध की साधना भूमि और सिद्धि-भूमि दोनों ही मगध रहे है।

मगध जनपद की आर्थिक समृद्धि का वर्णन पद्म चरित्र, कुवलयमाल, हरिवंश चरित्र, अभयकुमार चरित्र, श्रेणिक चरित्र, चउप्पन महापुरिस चरिअ, वसुदेव हिंडी और त्रिशष्टिशलाकापुरुष आदि ग्रन्थों में मिलता है। ये जनपद व्यापार का केन्द्र स्थल था। यहाँ कस्तूरी, सुगन्धित द्रव्य, गज, अश्व, वस्त्र आदि का व्यापार होता था। कथा कोष में शालिभद्र की कथा में उस समय की भोजन विधि का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है जब राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ सुभद्रा सेठानी के यहाँ जाते हैं। इसी प्रकार जम्बुस्वामी चरित् में भी पारंपरिक रीति-रिवाजों का उल्लेख दिया हुआ है।

जैनों और बौद्धों के कारण ही मगध की राजधानी राजगृह तीर्थस्थान बन गयी थी। तीर्थंकर महावीर ने विपुलाचल पर्वत पर निवास किया था और यहीं श्रेणिक बिम्बिसार को उपदेश दिया था। स्वर्णांचल (सोनगिरि), रत्नाचल, वैभार और उदयगिरि में भी जैन धर्म की प्राचीन कीर्तियों के अनेक निदर्शन भरे पड़े हैं। महावीर ने राजगृह में अनेक

वर्षावास किये थे। राजगृह से कुछ हटकर नालन्दा नामक स्थान है। यहाँ भी महावीर ने दो वर्षावास किये थे। बुद्ध के भी यहाँ अनेक संस्मरण हैं। बाद में आगे चलकर इसी नालन्दा में जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। इस विश्वविद्यालय के खण्डहर मीलों तक पाये जाते हैं। नालन्दा के पास ही पावापुरी है, जहाँ महावीर का निर्वाण हुआ था यह जैनियों का तीर्थस्थान है। यहाँ एक विशाल और सुन्दर तालाब के बीच में एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें भगवान महावीर के चरण प्रतिष्ठित हैं। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का भी जन्म राजगृह में हुआ था।

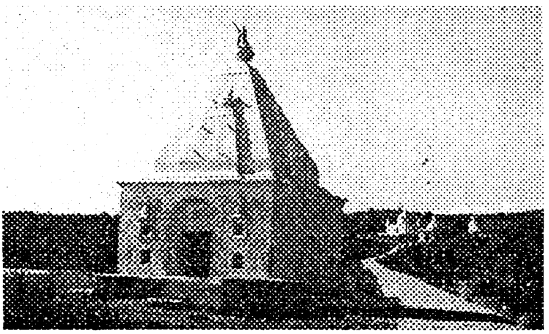

श्री वैभारगिरि मंदिर : राजगृह

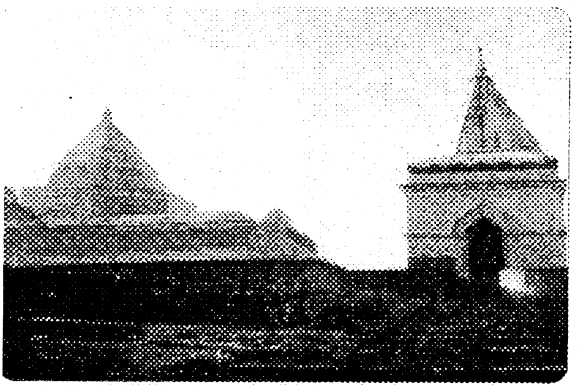

उदयगिरि के जिन मंदिर : राजगृह

फाहयान ने राजगृह का वर्णन करते हुए लिखा है कि— नगर से दक्षिण दिशा में चार मील चलने पर वह उपत्यका मिलती है जो पाँचों

पर्वतों के बीच में स्थित है। यहाँ पर प्राचीनकाल में सम्राट बिम्बसार का महल विद्यमान था। आज यह नगरी नष्ट-भ्रष्ट है।

मनियार मठ के पास एक पुराने कुएं में से कनिंगम को तीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। जिनमें एक भगवान पार्श्वनाथ की थी। काशीप्रसाद जायसवाल ने इस मूर्ति का लेख पढ़कर बताया कि यह लेख पहली शताब्दी का है और उसमें सम्राट श्रेणिक और विपुलाचल का उल्लेख है। इतिहासकारों के अनुसार वैभारगिरि पर्वत पर सातवीं शताब्दी तक जैन स्तूप विद्यमान था और गुप्तकाल की अनेको मूर्तियाँ थी। लेकिन आज जो जैन मंदिर वहाँ है उनके ऊपर का हिस्सा तो आधुनिक है किन्तु उनकी वेदी प्राचीन है। सोनभद्र गुहा का निर्माण मौर्य काल के राजाओं ने किया था। यहाँ प्रथम या द्वितीय शताब्दी का एक लेख है जिसमें उल्लेख है कि यहाँ पर वैरदेव ने गुफाएं निर्मित कराई थी जैन मुनियों के रहने के लिये और उनमें अर्हत की मूर्तियाँ स्थापित की थी। विपुलाचल 'रत्नगिरि' उदयगिरि और स्वर्णगिरि पर जो प्रतिमाएं है उनमें कुछ गुप्तकालीन

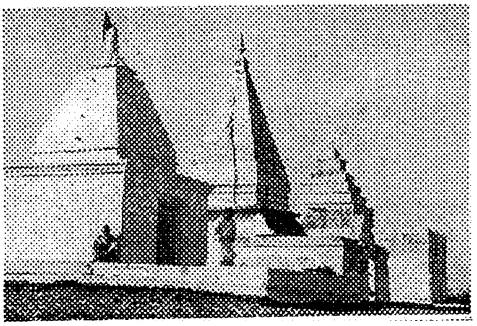

विपुलाचल पर्वत मंदिर : राजगृह

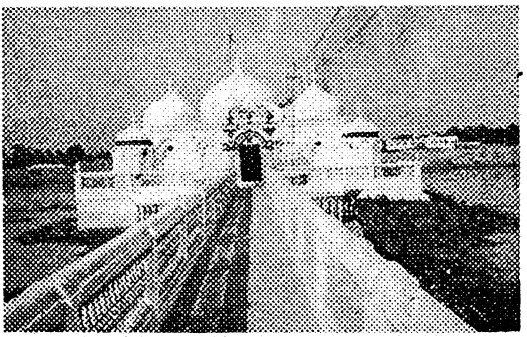

श्री जल मंदिर : श्री गुणायाजी

और कुछ उससे पूर्व की है। विविध तीर्थ कल्प में राजगृह में छत्तीस हजार घरों के होने का उल्लेख है।

राजगृही के इतिहास में गुणशील चैत्य का वर्णन आता है। यहाँ पर भगवान महावीर के कई बार आने का उल्लेख जैन साहित्य में मिलता है। गुणशील चैत्य का अपभ्रंश आज का गुणायाजी माना जाता है। इसे गौतम स्वामी का केवलज्ञान स्थान मानते हैं। यहाँ भी सरोवर के मध्य बना मंदिर पावापुरी के जलमंदिर का स्मरण कराता है। पावापुरी से यह स्थान 23 किलोमीटर दूर पर स्थित है।

गया से अणतीस किलोमीटर दूर हजारी बाग जिले में कुलुआ पहाड़ है यहाँ सैकड़ो जैन मंदिरों के भग्नावेश पड़े हुए है। यह तीर्थंकर शीतलनाथ का जन्म स्थान है। डॉ. स्टेन के अनुसार इस पर्वत के प्राचीन अवशेष जैन है। उन्होंने लिखा है कि **गुफा के भीतर पार्श्वनाथ की भव्य मूर्ति सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित है और उसके सिर पर सर्प फण है। इससे सटे हुए पश्चिम दिशा में एक छोटी गुफा में जिन मूर्ति स्थापित है जिसके नीचे सिंह प्रतीक के रूप में है।**

आजात शत्रु के समय मगध की राजधानी राजगृही से चम्पा में स्थित हो गई। यह बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य स्वामी की पंचकल्याणक भूमि है। जैन ग्रन्थों में यहाँ स्थित पूर्ण भद्र चैत्य का वर्णन मिलता है। From the Uvasagadasao and the Antagadadasao we learn that there was a temple called Punnabhadda (which we have dealt with in the following lines) at Campa in the time of Sudharman, one of the eleven disciples of Mahavira, who succeeded him as the head of the Jaina sect after his death. It is said that the town was visited by Sudharman, at the time of Kunika Ajatasatru

who went there bare-footed to see the Ganadhara outside the city which was again visited by Sudharman's successors.

उत्तराध्ययन में वर्णन है कि चम्पा नगरी में पालित नामका वैश्य श्रावक रहता था जो भगवान महावीर का अनुयायी था। वह जहाज से व्यापार करता हुआ पिहूड नगर में गया। वहाँ विवाह के बाद अपनी स्त्री को लेकर वापस आते समय उसके पुत्र हुआ जिसका नाम समुद्र में जन्म होने के कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर एक बार भवन की खिड़की पर बैठे समुद्रपाल ने एक अपराधी को मृत्यु चिन्हों से युक्त वध स्थान पर ले जाते हुए देखा। उसे देखकर उन्हें बोध हुआ कि अशुभ कर्मों का अन्तिम फल पाप रूप यह दिखाई दे रहा है और वह माता पिता से पूछकर प्रव्रज्या लेकर मुनि बन गये और अहिंसा, सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को स्वीकार कर इनका पालन करने लगे। अनेक परिषहों को जीतकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष को प्राप्त हुए।

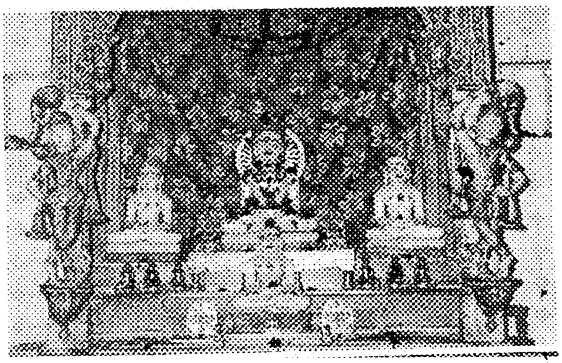

श्री वासुपुज्य स्वामी : चंपापुरी

बारहवें तीर्थंकर वासपुज्य स्वामी के पंच कल्याणक भूमि चम्पापुरी में सुभद्रा सती ने तीन पाषाणमय कपाट को अपने शील द्वारा कच्चे सूत-तन्तु-वेष्टित चलनी से कुएँ का जल निकालकर उससे सिंचित कर उद्घाटित किया था।

यहाँ के दधिवाहन राजा अपनी रानी पद्मावती के साथ उसका दोहद पूर्ण करने के लिए हाथी पर आरूढ़ होकर अरण्य-विहार करने गये। हाथी के न रुकने पर अरण्य में राजा वृक्ष की शाखा पकड़कर उतर गया। हाथी आगे चला गया और राजा अपने नगर में आ गया। देवी पद्मावती असमर्थता से उतर न सकी और उस पर चढ़ी हुई अरण्य में रह गई। हथिनी से उतर कर अरण्य में ही पुत्र-प्रसव किया, वह पुत्र करकण्डु नामक राजा बन प्रत्येक बुद्ध हुआ।

यहीं दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनवाला ने जन्म लिया, जिसने भगवान महावीर स्वामी को कौशाम्बी में सूप के कोणे में रहे हुए उड़द के बाकुले देकर पाँच दिन कम छः मासोपवास का पारणा द्रव्य क्षेत्र कालभाव अभिग्रह पूर्ण होने पर कराया।

यहाँ एवं पृष्ठचम्पा में प्रभु महावीर ने तीन वर्षाकाल विताए, उनके समवशरण हुए।

यहीं सुदर्शन सेठ पर उपसर्ग हुआ। यहीं विचरते हुए चौदह पूर्वधर श्री शय्यंभवसूरि ने अपने मनक नामक पुत्र को दीक्षित करके उसके अध्ययनार्थ दशवैकालिक सूत्र की रचना की।

यहीं के पूर्णभद्र चैत्य में भगवान महावीर ने कहा था कि जो अष्टापद पर आरोहण करता है वह उसी भव में मोक्षगामी होगा।

भगवान महावीर ने भगवती सूत्र के पंचम शतक का दशम उपदेश यहाँ पर दिया था। औपपातिक सूत्र में चंपापुरी का बहुत ही विस्तार से वर्णन मिलता है। उसमें लिखा है—

भगवान महावीर के समय में चम्पापुरी अंग देश की राजधानी थी। इसके स्वामी दधिवाहन को शतानीक कोशाम्बीपति ने हराकर पदच्युत कर दिया था और बाद में कोणिक ने इसे मगध में मिला लिया और पितृ शोक से राजगृह से राजधानी हटाकर चम्पानगरी को

विकसित कर राजधानी बना ली थी। औपपातिक सूत्र (उववाई उपांग) में चम्पानगर का बड़ा ही विशद वर्णन है। यह आचारांग का उपांग है अतः यह सूत्र अति प्राचीन और प्रामाणिक है। तत्कालीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में इन वर्णनों का बड़ा भारी महत्व है। नगर के बाहर और भीतर बड़े-बड़े उद्यान, तालाब, बगीचे, कुए बावड़ी आदि थे। प्राचीन और परिखा से घिरा हुआ सुरक्षित नगर ऋद्धि, समृद्धि से परिपूर्ण था। यहाँ बहुत से अर्हतचैत्य जिनालय थे। नगर के उत्तर पूर्व-इशान कोण में पूर्णभद्र नामक यक्षालय अति प्राचीन था जो ध्वजा पताका और घण्ट-घण्टिकाओं से मण्डित तोरणयुक्त था, यक्ष प्रतिमा के हाथ में मोरपीछी थी। यह यक्ष नागरिक जनों से पूजित और बड़ा ही प्रभावशाली था। इसका उद्यान बड़ा ही विशाल और मनोहर था, जहाँ भगवान महावीर का समवशरण होता था। भगवान महावीर के चातुर्मास वर्णन में चम्पा और पृष्टचम्पा में चतुर्मास करने का उल्लेख मिलता **"चंपंचपिट्ठिचंपंच नीसाए तओ अन्तरावासे वासा वासं उवागए"** (कल्पसूत्र) यहाँ के महाराजा कोणिक और धारणीरानी श्रमण भगवान महावीर के परम भक्त थे जिनका भी उववाई सूत्र में वर्णन है।

श्री जिनप्रभसूरिजी ने कलिकुण्ड-कुर्कटेश्वर कल्प में लिखा है कि अंग जनपद में करकण्डु राजा के राज्य में चम्पानगरी से अनति दूर में कादम्बरी अटवी थी जिसमें कलि नामक पर्वत था और उसके नीचे कुण्ड नामक सरोवर था इस वन में भगवान पार्श्वनाथ छद्मस्थ अवस्था में विचरे थे और कलिकुण्ड तीर्थ की स्थापना हुई थी।

चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रह कल्प में श्री जिनप्रभसूरि जी ने **'चम्पायां विश्वतिलकः श्री वासुपूज्य'** लिखकर भगवान वासुपूज्य को विश्वतिलक नाम से संबोधित किया है एवं पार्श्वनाथ स्वामी के तीर्थों में **'चम्पायामशोक'** लिखा है।

यतिवृषभ ने केवल चंपा का नामोल्लेख 'तिलोयपण्णति' में किया है। छठी शताब्दी में पूज्यपाद ने 'निर्वाणभक्ति' में '**चम्पापुरे च वसुपूज्य सुतः सुधीमान् सिद्धि परामुपगतो गतराग बन्ध**' लिखकर चम्पापुरी में निर्वाण बतलाया है। रविषेण के पद्मपुराण में '**श्रावस्त्यां संभव शुभूं चम्पायां वासुपूज्यकं**' लिखकर वासुपूज्य स्वामी का जन्म कल्याणक माना है। सातवीं शती के जटासिंह नंदि ने '**चंपापुरे चैव हि वासुपूज्य**' लिखकर उनकी निर्वाण भूमि माना है। जिनसेन ने हरिवंशपुराण (सर्ग 19) में चम्पापुरी का इस प्रकार वर्णन किया है-

बाह्योद्यानेऽथ चम्पायाः पतितोम्बुजसंगमे।
सरस्यम्बुरुहच्छन्ने तदुत्तीर्य तटीमितः 114
मानस्तंभादिसंलक्ष्यं वासुपूज्यजिनालयम्।
परीत्य तत्र वंदित्वा दीपिकोज्जवलितेऽवसत् 115

इसी हरिवंश पुराण में आगे चलकर लिखा है कि वसुदेव ने चम्पापुर में वासुपूज्य जिनालय को वन्दन किया यहाँ बड़ा मानस्तंभ था, अष्टान्हिका उत्सव में चम्पा निवासी लोग वासुपूज्य प्रतिमा की पूजा करते थे। यतः

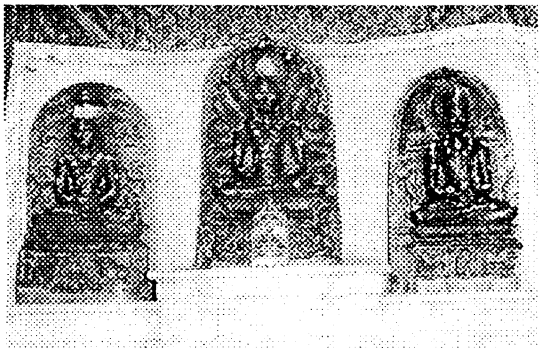

श्री पार्श्वनाथ स्वामी : पटना

चम्पायां रममाणस्य सहगन्धर्वसेनया।
वसुदेवस्य संप्राप्तः फाल्गुनाष्टदिनोत्सव ।।1
जन्म निष्क्रमण ज्ञान निर्वाण प्राप्तितोऽर्हतः
वासुपूज्यस्य पूज्यां तां चम्पा प्रापुः स्फुरद् गृहाम्।।3

चम्पावासी जनः सर्वो निश्चक्राम सराजकः
प्रतिमां वासुपूज्यस्य पूज्यां पूजयितुं बहिः।।5

गुणभद्र ने उत्तरपुराण के पर्व 58 श्लो. 52-53 में लिखा है कि चम्पा के अग्रमन्दिर में बासुपूज्य स्वामी का निर्वाण हुआ था।

अग्रमन्दरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे
बने मनोहरोद्याने पल्यंकासन माश्रितः 52
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्नके
विशाखायांययौ मुक्तिं चतुर्नवति संयतैः 53

मदनकीर्त्ति कृत शासन चतुर्विंशिका—
यस्याद्यापि सुदुन्दुभिस्वरमलं पूजां सुराः कुर्वते
भव्यप्रेरितपुष्पगन्धनिचयो ऽध्यारोहति क्ष्मातले
नित्यं नूतन पूजयार्चिततनुः श्री वासुपूज्योऽवभात्
चम्पायां परमेश्वरः सुखकरी दिग्वाससां शासनम् 21

निर्वाणकाण्ड में की प्रथम गाथा में '**चम्पाए वासुपुज्जु जिंणनाहो**' लिखा है। उदयकीर्त्तिने '**पुणर्चपणयरि जिणवासुपुज्जु णिव्वाणपत्त छंडेवि रज्जु**' तथा गुणकीर्त्ति ने तीर्थवन्दना में—'**चम्पापुरी वासुपूज्य सिद्धि झाल**' लिखा है— —चम्पापुरी तीर्थ भंवरलाल नाहटा'

आजातशत्रु के पुत्र उदायी के समय मगध का केन्द्र स्थल चम्पा से पाटलीपुत्र में स्थित हो गया। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्ट पर्व 6.34 में लिखा है कि उदायी ने पाटलीपुत्र के केन्द्र में एक जिन मंदिर का निर्माण किया। उदायी के बाद हर्यकवंश का अन्त हो गया और शिशुनाग वंश का प्रारम्भ हुआ। उसके बाद नंदवंश का राज्य स्थापित हुआ। नंदवंश के सम्राट नंदीवर्धन ने कलिंग देश को जीतकर वहाँ से जिन प्रतिमा को लाकर पाटलीपुत्र में प्रतिष्ठित की। इस वंश का अन्त मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त नें किया। लगभग इसी समय

भगवान महावीर के छठवें पटधर भद्रबाहु स्वामी हुए। ऐसा माना जाता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने अंतिम समय इन्हीं भद्रबाहु स्वामी से दीक्षा लेकर दक्षिण में चले गये। भद्रबाहु स्वामी के बाद उनके पट्टधर स्थूलीभद्र स्वामी हुए जिनके समय में जैन सूत्रों की प्रथम वाचना पाटलीपुत्र में हुई। पटना के लोहानीपुर से मौर्य कालीन निर्ग्रन्थ मूर्ति मिली है। यह भी कहा जाता है कि पाटलीपुत्र के गुलजार बाग में स्थूलीभद्र स्वामी का मंदिर था। It is quite in keeping with the tradition that there should be a temple of Sthulabhadra in the city which is located in Gulzarbagh ward. (Alltekar and Mishra Report Kum. Exca 1951-55 p. 10)

ऐसी मान्यता है कि स्थूलीभद्र स्वामी का निर्वाण उसी स्थान पर हुआ था। दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान पटना में आगमकुआं है। यूवानचंग ने इस कुएँ को अशोक का नरक कहा है जो गर्मजल का कड़ाह (हंडा) हुआ करता था। एक बार पाटलिपुत्र के राजा के आदेशानुसार एक जैन श्रेष्ठी सुदर्शन भट्ठी में कूद गये किन्तु वह सुरक्षित बच गये। जब राजा को उनकी आध्यात्मिक शक्ति के बारे में ज्ञान हुआ तो उसने उन्हें मुक्त कर दिया। सुदर्शन का निर्वाण मंदिर आगम कुएँ के बगल में है।

326 ई. पूर्व भारत में सिकन्दर के आक्रमण की चर्चा यूनानी इतिहासकारों ने विस्तृत रूप में की है। जिसके परिणाम बहुत ही दूरगामी हुए। भारतीय दृष्टिकोण से इसका महत्त्व इस बात में है कि उसने भारत और पश्चिमी देशों के बीच आवागमन का मार्ग खोल दिया, अन्यथा भारतीय इतिहास में उसके आक्रमण का कोई विशेष स्थान नहीं है। उसे महान् सैनिक सफलता भी नहीं कह सकते। जो कुछ भी सफलता उसके हाथ लगी वह छोटी-छोटी जातियों और राज्यों पर

धीरे-धीरे प्राप्त विजय मात्र थी। भारतीय सैनिक शक्ति का दुर्ग समझे जानेवाले मगध साम्राज्य के निकट बढ़ने का साहस वह न कर सका। उसे झेलम और चेनाव के नीचे के छोटे से प्रदेश के शासक पोरस के विरुद्ध जिस प्रकार लोहा लेना पड़ा और उसके लिए जो प्रयत्न करने पड़े, उसको देखते हुए इस बात की सम्भावना नहीं जान पड़ती कि शक्तिशाली नन्द साम्राज्य को पराजित करना उसके लिए सरल होता। **इन सभी बातों को देखते हुए यवन सभ्यता की चकाचौंध से चकित न होनेवाला कोई भी आधुनिक इतिहासकार इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता यदि वह यह समझे कि यवन लेखकों में से अधिकांश ने जो सिकन्दर की वापसी का कारण उसके-सैनिकों के आगे बढ़ने की अनिच्छा को ही माना है वह एकमात्र कारण न था और न वह उन प्राचीन यवन लेखकों के इस कथन की ही मनगढ़न्त कहकर उपक्षा कर सकता है कि सिकन्दर के लौटने का कारण नन्दों की अपरिमित शक्ति का आतंक था।** (हीरालाल दूगड़) इस समय तक पूर्वी राज्यों की शक्ति और गौरव का प्रभाव पूरे भारत में स्थापित हो चुका था।

The Prasii surpass in powers and glory every other people in the whole of India and their capital being Palibothra is a very large and wealthy city, after which some call the people itself the Palibothra, may, even the whole tract along the Ganges. Their king has in his pay a standing army of 600,000 foot-soldiers, 30,000 cavalry and 9,000 elephants: (Ancient India)

चंद्रगुप्त : यवनों की पराधीनता से देश को मुक्त करने का श्रेय एक स्वर से हम चंद्रगुप्त मौर्य को दे सकते हैं। इस वीर का आरम्भिक जीवन प्रायः पूर्णतः अज्ञात है, परन्तु उसने अपने परवर्ती जीवन में जो

महान् सफलताएँ प्राप्त की, उसके कारण उसकी स्मृति असंख्य दंतकथाओं में सुरक्षित है। बाद के ब्राह्मण-ग्रन्थों में जो संकलित वेदों से प्रभावित ब्राह्मणों के मस्तिष्क की उपज लगते हैं, उसे मगध के नन्द शासक की एक नीचकुलोत्पन्न मुरा नामक स्त्री से उत्पन्न कहा गया है और यह माना गया है कि उस मुरा के नाम पर ही वंश का नाम मौर्य पड़ा। तिथि की दृष्टि से इससे पूर्व के बौद्ध इतिवृत्तों में उसे क्षत्रिय माना गया है। महापरिनिब्बान सुत्त में उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त पिप्पलीवन के मोरिय नामक क्षत्रिय-कुल में जन्मा था और मोरिय गणतंत्र का रहने वाला था। यह गणतंत्र गोरखपुर जिले में पड़ता है। महावीर के गणधरों में एक मौर्य पुत्र भी थे। मोरिय जाति में विद्या और वीरता दोनों ही विद्यमान थे।

चन्द्रगुप्त का कर्म क्षेत्र व्रात्य भूमि मगध था जहाँ उसने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया।

चंद्रगुप्त की सैनिक शक्ति भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण छोर तक फैल चुकी थी। इस प्रकार प्राच्यभूमि में प्रथम एतिहासिक साम्राज्य की स्थापना चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा हुई।

Chandragupta Maurya was a powerful and glorious monarch of the Prachya people. This Prachya kingdom did not extend only upto the Indus river but much beyond, upto the Kaukasos region in the north and Arachosia and parts of Gedrosia in the far west. He had a very large military force, and vast financial resources. Chandragupta's rise to greatness is indeed a romance of history. ----

महान पराक्रमी चन्द्रगुप्त, जिसके जीवन का प्रारम्भ एक सैनिक से हुआ और जिसने एक बहुत बड़े साम्राज्य को धराशायी किया तथा

जिसने स्वयं एक बहुत बड़े साम्राज्य का निर्माण किया; जिसका वाह्य जीवन बहुत ही व्यस्त और सख्त था; पर उसका अन्तर कुछ और था। जीवन के अन्तिम प्रहर में वह अन्तर्मुख हो गया। जिसने तलवार से भारतवर्ष की सीमा खींची थी, जो खून की नदी में तैरता था, जिसने जीवन में सभी सुख-ऐश्वर्य का भोग किया, कहा जाता है कि उसके राज्यकाल में मगध में घोर अकाल पड़ा— इसके बाद वह मैसूर की ओर चला गया, जहाँ उन्होंने सल्लेखना द्वारा शरीर का त्याग किया। चन्द्रगुप्त के विषय म Ancient India में लिखा है—

Chandragupta in his last days, renounced the world and followed the Jaina migration led by Bhadrabahu to a place in Mysore known as Shravana Belgola, where some local inscriptions still perpetuate memory of Chandragupta and Bhadrabahu living together as saints. The hill where he lived is still known as Chandragiri, and a temple crected by him as Chandraguptabasti. Chandragupta, in the true Jaina fashion, fasted unto death (Samlekhana Samthara) in this place. As he belonged to the Shramanic way, the chroniclers of the Brahmanic way gave him a degraded descent. He was called base-born, a Shudra, an outcaste and of low birth. He is said to have blood relationship with the Nandas who are said to have low and immoral origin. The Brahmana puranas and other literature speak despisingly of (the Nandas and) Chandragupta. Why ? answer is that he was a Prachya hero.

ब्राह्मणों द्वारा चन्द्रगुप्त को नीची जाति का बताने के पीछे जो कारण था वह उसका जैन होना, प्राच्य देश का सम्राट होना था।

Chandragupta is called a Prachya because he was the ruler of the Prachya territory and the non-Aryan Asura Prachya people. Chandragupta, the Prachya, was a great Jaina hero following the Shramanic way of life.

गांगणि में चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित मूर्ति का उल्लेख हमें मिलता है। राजस्थान में गांगणि नाम का गाँव जोधपुर से अठारह किलोमीटर पर है वहाँ अत्यन्त प्राचीन पार्श्वनाथ का मंदिर है जो मौर्य कालीन है। ई. सन् 1662 ई. में वहाँ तालाब के पास भूगर्भ में कई मूर्तियाँ मिली थी। उस समय कवि समयसुन्दर गणि यात्रार्थ गांगणि गये थे तथा उन्होंने उन मूर्तियों का दर्शन व निरीक्षण किया तथा उनका वर्णन एक स्तवन में लिखा है-

प्रतिमा श्वेत सोनातणी, मोटो अचरज ये होजी।
चन्द्रगुप्त राजा भये, चाणक्य दिरायों राजोजी।
तिण यह बिंब भरबियो, साध्या आत्म काजो जी।।

इसके अलावा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है कि सम्राट ने देवस्थानों के लिये आज्ञा दी थी कि जो कोई देव मंदिर का अनादर करेगा वह दण्ड का भागी होगी। (आक्रोशाद्वेव चैत्याना मुत्तंमं दंड मर्हति)

चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार द्वारा पिता की स्मृति में बनाया गया मंदिर है ऐसा भारतीय सरकार के पुरातत्वविदों द्वारा उल्लेख किया गया है।

अशोक : अशोक के शासनकाल की जिस पहली घटना की प्रामाणिक जानकारी हमें है वह राज्याभिषेक के नौ वर्ष बाद होनेवाली कलिंग विजय है। सुवर्णरेखा और गोदावरी नदियों के बीच भारत के पूर्वी तट की लम्बी पट्टी को प्रायः कलिंग कहा जाता है। यद्यपि उसकी

अशोककालीन निश्चित सीमा नहीं बतायी जा सकती, तथापि निस्संदेह ही वह एक जन बहुल और शक्तिशाली राज्य था। अशोक के तेरहवें शिलालेख में एक भीषण युद्ध के पश्चात् कलिंग की विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस युद्ध में डेढ़ लाख आदमी पकड़े गये। एक लाख मारे गये थे। उस समय कलिंग का राजा क्षेमराज था जो वैशाली के गण प्रमुख चेटक का वंशज था और जैन धर्मी था। सम्भवतः अशोक ने स्वयं इस युद्ध का संचालन किया था तथा उसकी विभीषिका और उनके परिणामस्वरूप कष्ट और रक्तपात से उसका हृदय विचलित हो उठा। उसके कारण उसके हृदय में जो भावनाएं उठी उनका उसने अपने शिलालेख में उसने इस प्रकार वर्णन किया है।

"इस प्रकार कलिंग जीतनेवाले देवानांप्रिय को बड़ा खेद हैं, क्योंकि किसी अविजित देश की विजय में वध, मरण और लोगों का बंदीकरण होता है। यह देवानांप्रिय को अत्यन्त दुःखद और खेदजनक जान पड़ता है। देवानांप्रिय इससे भी अधिक यह इसलिए खेदजनक समझता है कि वहां ब्राह्मण, श्रमण तथा दूसरे धर्म वाले और गृहस्थ रहते हैं। ऐसे देश में ऐसे लोगों की हत्या, हिंसा और उनका प्रियजनों से वियोग होता है, अथवा मित्रों, परिचितों, सहायकों और कुटुम्बियों को जो स्वयं तो सुरक्षित हैं और जिनका स्नेह अबाध है, कष्ट होता है। इस प्रकार उनका भी एक प्रकार से उपघात होता है।"

अशोक ने दूर के देशों में धर्म प्रचार के लिए धर्म प्रचारकों का दल भेजा था। उसके धर्म प्रचारकों ने भारत के विभिन्न भागों और लंका का ही भ्रमण नहीं किया, वरन् वे पश्चिमी एशिया, मिस्र और पूर्वी यूरोप भी गये। सिर्फ उसके समय मगध में अहिंसा का संदेश जिन विदेशी राज्यों में पहुँचा उनमें से इन पाँच का उल्लेख अशोक के लेखों में मिलता है—सीरिया और पश्चिमी एशिया का राजा अन्तियोक थियोस, मिस्र का राजा तुरमय द्वितीय (फिलोडेल्फस), मकदूनिया का

राजा अन्तिकिन, साइरीन का राजा मग और एपिरस का राजा सिकन्दर।

धर्म के मूल तत्त्वों को बताकर जनता के चरित्र को उठाना उसका प्रधान लक्ष्य और चिन्ता थी। इसलिए उसने चट्टानों पर लेखों को अंकित कराया जो लगभग 2300 वर्ष बीत जाने पर भी उसके जीवन की पवित्रता और विचारों की उच्चता के अमरस्मारक हैं। धर्म के जिस स्वरूप पर उसने जोर दिया, वह किसी धार्मिक सिद्धान्त की अपेक्षा सदाचार के नियमों का एक संग्रह है। उसने न तो कभी तत्त्व-विज्ञान की चर्चा की और न ईश्वर और आत्मा का उल्लेख किया। उसने कवल जनता से अपनी वासनाओं को नियन्त्रित करने, अपने आंतरिक विचारों में जीवन और आचरण को पवित्र बनाने, अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु होने, जानवरों को न सताने और न मारने, उनकी चिन्ता रखने, सबके प्रति उदार होने, माता, पिता, गुरु, सम्बन्धियों, मित्रों और साधुओं के प्रति उचित सम्मान प्रकट करने, नौकरों और दासों के प्रति उदारता तथा दया का भाव रखने और सर्वोपरि सत्य बोलने को कहा। ये हीं श्रमण संस्कृति के आधारभूत तत्त्व है जो इसी प्राच्य भूमि से दुनिया के दूसरे देशों में फैले।

सम्राट ने इन सत्यों का न केवल प्रचार किया वरन् स्वयं भी उन पर आचरण किया। उसने आखेट और माँस-भक्षण आदि त्याग दिया। उसने मनुष्य और पशुओं के लिए न केवल अपने साम्राज्य में वरन् पड़ोसी राज्यों में भी अस्पताल स्थापित किए। उसने ब्राह्मणों और अन्य धर्मावलंबियों को मुक्त-हस्त दान दिया। उसके लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि उसने मनुष्यों और पशुओं के उपयोग के लिए सड़कों के किनारे पांथशालाएं बनवाई, कुएं खुदवाये और पेड़ लगवाये। पशु-वध रोकने के लिए उसने अनेक नियम जारी किये।

अशोक की माता धर्मा के गुरु आजीवक सम्प्रदाय के थे। गया के पास बराबर की पहाड़ी में गुफाओं की श्रृंखला है जिन्हें अशोक और दशरथ ने आजीवक संघ को दान की थी। Other Jain relics of Mauryan Bihar are a number of caves in the Barabar and Nagarjun Hills, dedicated by Ashoka and Dasaratha to the Ajivika sect.

उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी को पल भर भी प्रमाद न करके धर्म का आचरण करने का उपदेश दिया है।

धम्मं पि हुसद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम मा पमायए।।20

"धर्म पर श्रद्धा होने पर भी उनका काया से आचरण करना अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिए हे गौतम, क्षणभर भी प्रमाद मत करो।" इसी की अभिव्यक्ति हमें अशोक के शिलालेख के इस उल्लेख से होती है जिसमें लिखा है कि— "बहुत दिनों से हर घड़ी काम करने और समाचार प्राप्त करने की प्रथा नहीं रही, अतः अब मैं यह व्यवस्था करता हूँ कि सब समय और सब जगह चाहे मैं भोजन करता रहूँ, चाहे अन्तःपुर में रहूँ, अथवा शयनागार में, अथवा गोपनागार में, या अपने यान में अथवा राजोद्यान में, लोक-कार्य की सूचना प्रतिवेदकों द्वारा मुझे दी जाय। मैं प्रजा का कार्य हर जगह करने को प्रस्तुत हूँ..... मैंने आदेश दे रखा है कि प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान में मुझे तुरन्त सूचना मिलनी चाहिए क्योंकि अपने कार्यों और प्रयत्नों से मुझे कभी पूर्ण सन्तोष नहीं होता, क्योंकि जनता के हित के लिए ही मुझे सतत प्रयत्न करना चाहिए और उसका मूल कार्यों के संचालन और प्रयत्न में है। जो कुछ मैं प्रयत्न करता हूँ उसका उद्देश्य यही है कि मैं प्राणि-

मात्र के प्रति अपने ऋण से उऋण हो सकूँ और मैं उन्हें यहाँ प्रसन्न रख सकूं तथा परलोक में वे स्वर्ग प्राप्त कर सकें।"

अशोक की अहिंसा मनुष्यों तक सीमित नहीं थी बल्कि उसकी परिधि में क्षुद्र, मूक पशु-पक्षी भी आ गये थे। कुछ पर्वों अष्टमी, चतुर्दशी आदि के दिनों में जानवरों को दागने बधिया करने पर भी प्रतिबन्ध था। जनता की धार्मिक परम्पराओं को और भी सुदढ़ करने के लिये उसने तरह-तरह के दृश्यों के प्रदर्शन के आयोजन किये जैसे हाथी, अग्नि ज्वाला और दीपमालिका आदि के जुलूस निकाले। इन जुलूसों में देव प्रतिमाओं का प्रदर्शन होता था। यह विचारणीय है कि ये प्रतिमाएं किनकी थी क्योंकि बौद्धों की मूर्तियाँ सर्वप्रथम कुषाण काल में बनी थी। अतः निश्चित तौर पर ये जिन तीर्थंकरों की मूर्तियां होनी चाहिये। क्योंकि इस प्रकार की परम्परा आज भी जैनियों में प्रचलित है।

अशोक ने अपनी प्रजा पर किसी भी धर्म को थोपने की कोशिश नहीं की। सभी धर्मों को राजकीय आश्रय दिया। उसके द्वारा नियुक्त धर्म महामात्य राज्य के धन से ब्राह्मणों, आजीविकों, निग्रन्थो सभी का हित चिंतन करते थे। चट्टान लेख 12 में लिखा है '**सभी सम्प्रदायों के सार की वृद्धि हो।**' स्तम्भ लेख छः में उसने लिखवाया है- "मैं सभी समाजों को ध्यान में रखता हूँ क्योंकि मैंने सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों की विविध प्रकार से पूजा की किन्तु अपने आप स्वयं इन सबके पास जाना मैं मुख्य कार्य समझता हूँ।"

हम कह सकते हैं कि अशोक के लेखों में जिस धर्म के तत्व है वह कोई धर्म विशेष नहीं है वह एक आचरण संहिता है जिसमें सभी धर्मों का सार है।

डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि अशोक ने आसवों के संबंध में बौद्धों के स्थान पर जैनों का मत माना है। डॉ. भंडारकर

(अशोक, पृ. 129-30) के मतानुसार अशोक के अन्य लेखों पर भी जैन प्रभाव दिखाई पड़ता है। उसके लेखों में जीव, प्राण, भूत और जात शब्द आचारांग सूत्र के **पाणा-भूया-जीवा-सत्ता** के ही पर्याय है। इस प्रकार अशोक ने अपने उस वचन का पालन ही किया है जिसमें उसने यह कहा है कि उसने अपने धर्म में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन—सभी धर्मों का सार ग्रहण किया है।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अशोक के बाद उसका पोता सम्प्रति राजगद्दी पर आसीन हुआ। विविध तीर्थकल्प में लिखा है कि "मौर्य वंशी चन्द्रगुप्त के वंश में बिन्दुसार, अशोक श्री, कुणाल और उसका पुत्र त्रिखंड भर्ताधिप परमाहित, अनार्य देशों में भी श्रमण विहार प्रवर्तन करने वाला महाराज सम्प्रति हुआ।"

"तद्वंशे तु बिन्दुसारोऽशोकश्रीकुणालसूनुस्त्रिखण्ड भरताधिपः परमार्हतो अनार्यदेशेष्वपि प्रवर्तितश्रमणविहारः सम्प्रतिमहाराजश्चाभवत्।"

—विविधतीर्थकल्पे पाटलीपुत्रनगरकल्पः पृ. 69।

सम्राट सम्प्रति ने आचार्य सुहस्ति स्वामी से जैन धर्म स्वीकार किया और जैन धर्म का देश और विदेश में प्रचार किया। कई इतिहासविदों का यह मानना है कि जिन शिलालेखों पर देवानाम प्रियदर्शिन लिखा है वे सब सम्प्रति के शिलालेख है और जिनपर सिर्फ देवानाम प्रिय या देवानाम प्रिय अशोकस्स लिखा है वे अशोक के है क्योंकि इन शिलालेखों में जैन तत्त्व दर्शन तथा जैन पारिभाषित शब्दों का प्रयोग इतना अधिक है कि इन्हें बौद्ध नहीं माना जा सकता है। सम्प्रति के शिलालेखों में स्थावर जीवों का वर्णन, समाचरण और संयम, अष्टमी, चतुर्दशी और पर्युषण पर्व की पुण्य तिथियों में पक्षियों के वध, शिकार का निषेध, संयम, भावशुद्धि, आश्रव का उल्लेख तथा स्वामी वात्सल्य का प्रयोग जो आज भी जैन परम्परा में दिखाई देता

है, स्तम्भ के ऊपर सिंह की मूर्तियां एवं चक्र ये सब इस बाद की पुष्टि करते हैं कि जिन्हें हम अशोक के शिलालेख मानते हैं उनमें से अधिकांश सम्प्रति के है। An apitome of Jainism में सम्प्रति के लिये लिखा है कि Samprati was a great Jain monarch and a staunch supporter of the faith. He erected thousands of temples throughout the length and breadth of its vast empire and consecreted large number of images. He is stated further to have sent Jain missionaries and ascetics abroad to preach Jainism in the distant countries and spread the faith amongst the people there.

-- An Epitome of Jainism, Appendix A. p. v

सम्प्रति के बनाये हुए मंदिरों के अवशेष गिरनार में तथा कुम्भलगढ़ के किले में आज भी दृष्टिगोचर है। 'कुम्भलगढ़ अजेयदुर्ग' पुस्तक में लेखक डॉ. गौरीशंकर अशावा ने लिखा है कि इस दुर्ग को सबसे प्रथम सम्प्रति ने निर्मित कराया था। आज भी वहाँ अनेकों जैन मंदिर है। यहाँ मामादेव मंदिर की खुदाई के दौरान 268 छोटी-बड़ी सफेद व काले पत्थर की जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। कहा जाता है कि महाराणा कुम्भा के समय में यहाँ 700 जैन मंदिर थे तथा संध्या की पूजा के समय 700 घंटियां बजते हुए मनुष्य मात्र को अपने जीवन के परम लक्ष्य का ध्यान दिलाती थी। कर्नल टॉड ने लिखा है कि **कमलमेर का शेष शिखर समुद्रतल से 3353 फीट ऊँचा है। यहाँ ऐसे कितने ही दृश्य विद्यमान है, जिनका समय अंकित करने में लगभग एक मास का समय लगने की सम्भावना है। किन्तु हमने केवल उक्त दुर्ग और एक बहुत पुराने जैन मन्दिर का चित्रांक समाप्त करने का समय पाया था। इस मंदिर की गठन प्रणाली बहुत प्राचीन काल के समान है।** कर्नल टॉड ने यह मंदिर राजा सम्प्रति का बनाया हुआ लिखा है।

विविध तीर्थ कल्प के अनुसार तत्वार्थसूत्र की रचना आचार्य उमास्वाती ने पाटलीपुत्र में की थी। उस समय पाटलीपुत्र में मुरुण्ड राजाओं का राज्य था। वृहत कल्पवृत्ति से पता चलता है कि पाटलीपुत्र के मुरुण्ड राजा जैन धर्मी थे। पादलिप्त प्रबन्ध और प्रभावक चरित्र से स्पष्ट होता है कि पादलिप्त सूरि ने पाटलीपुत्र के मुरुण्ड राजा को मस्तिष्क पीड़ा से मुक्त किया था।

The continuity of Jainism at Pataliputra in the Ist-2nd century A. D. is proved by the Tattvarthasutra of Umasvati, which is held in esteem by both the Svetambara and Digambara Jains and was composed in the city towards the beginning of the Christian era. Jainism in this period appears to have attracted the Murundas of Patna. The Brhatkalpavrtti refers to a Murunda king of Pataliputra, who was a pious Jain and whose widowed sister had also embraced the same faith. The Padalipta-prabandha of the Prabhavakacarita relates the story how Padalipta cured king Murunda of Pataliputra of his terrible headache.

---Jainism and Jain relics in Bihar, S. P. Singh.

मुरुण्ड राजाओं का वर्णन समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भ लेख में मिलता है जिसमें मुरुण्ड राजाओं के लिये देव पुत्र लिखा गया है। टोलमी ने मुरुण्डों को Moroundai कहा हैं। इनका राज्य गंगरादी की पश्चिमी सीमा पर बताया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके अधीन उत्तर विहार से लेकर पूरा गंगरादी क्षेत्र था।

लगभग दूसरी शताब्दी में आचार्य पादलिप्त सूरिजी आकाशगामिनी विद्या द्वारा सम्मेत शिखर की तीर्थ यात्रा करने आते थे। आचार्य श्री बप्प भट्ट सूरि जी ने भी यहाँ की यात्रा की थी। तेरहवीं शदी के आचार्य

देवेन्द्र सूरिजी द्वारा रचित बन्दारस्मृति में यहाँ के जिनालयों और प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है। कुम्भारिया तीर्थ से प्राप्त एक शिलालेख में शरण देव के पुत्र वीरचरण द्वारा आचार्य परमानन्दसूरिजी के हाथों के द्वारा सम्वत् 1345 में सम्मेत शिखर पर प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख मिलता है। सन् 1649 में अकबर बादशाह ने जगत् गुरु हीर विजयसूरिजी को सम्मेत शिखर क्षेत्र भेंट कर विज्ञप्ति दी थी। सन् 1809 ई. में मुर्शिदाबाद के जगत सेठ महताबराय को दिल्ली के बादशाह अहमदशाह ने उनके कार्यों से प्रसन्न होकर उन्हें मधुबन कोठी तथा पार्श्वनाथ पहाड़ का मालिकाना दिया था।

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के इतिहास में उल्लेख है कि विक्रम संवत् 250 के लगभग आचार्य कक्कसूरि चतुर्थ के सानिध्य में संघपति श्रेष्ठीवर्य महादेव ने सम्मेत शिखर के लिये संघ निकाला।

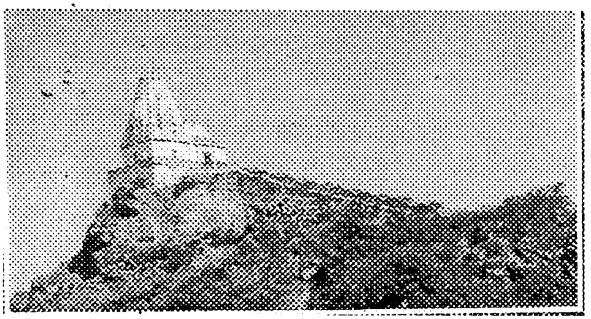

श्री पार्श्वनाथ टूंक : सम्मेत शिखरजी

सम्मेत शिखर पहुँचकर सूरिजी ने पूर्वी भारत में विहार करने का निश्चय किया और पाँच सौ साधुओं को अपने पास रखकर बाकी साधुओं को संघ के साथ वापस भेज दिया। सूरिजी ने तीन सौ साधुओं में से पचास-पचास साधुओं की छः वर्ग बनाये और पूर्व धरा के प्रत्येक नगर में विहार करने का आदेश दिया और दो सौ साधुओं को अपने पास रखा। इन लोगों ने राजगृह, चम्पा, वैशाली, बंगदेश, कलिंग तक विहार किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया।

अपना अन्तिम समय निकट जानकर वे सम्मेत शिखर पर सत्ताईस दिन के अनशन पूर्वक समाधि के साथ प्रयाण कर गये।

आचार्य कक्कसूरि के शिष्य आचार्य देवगुप्त सूरि चतुर्थ ने भी पूर्व भारत की ओर विहार किया। अंग, बंग, कलिंग की भूमि में विहार करते हुए सम्मेत शिखर पर जाकर बीस तीर्थंकरों की तथा अपने गुरुवर्य आचार्य कक्कसूरि की निर्वाण भूमि की यात्रा की थी। इनके समय में मथुरा के श्रेष्ठी गौत्रीय शाहशाखला ने श्री सम्मेत शिखर जी का संघ निकाला था।

जैन परम्परा के इतिहास के पृष्ठ 502-3 तथा पन्यास श्री कल्याण विजय द्वारा सम्पादित तपागच्छ पट्टावली के प्रथम भाग के पृष्ठ 104 में लिखा है कि नौवीं शताब्दी में श्री प्रद्युम्न सूरि ने सम्मेत शिखर की कई बार यात्रा की थी उन्होंने मगध देश में विचरण किया था और नये मंदिर बनवाने और पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया था। अतः इससे स्पष्ट होता है कि नौवीं शताब्दी के पूर्व भी यहाँ पर जैन जातियाँ थी। बड़गाँव, नालन्दा और बिहार शरीफ में जैनों की एक महत्तियाण जाति यहाँ प्राचीन काल से रहती थी। जिसे मणिधारी श्री जिनचंदजी ने प्रतिबोधित किया था। इस जाति में कई गोत्र थे और इन लोगों ने ही पूर्व के जैन मंदिरों और तीर्थों की देख-रेख की थी। विक्रम संवत् 1412 की राजगृह-बिपुलाचल प्रशस्ति तथा संवत्

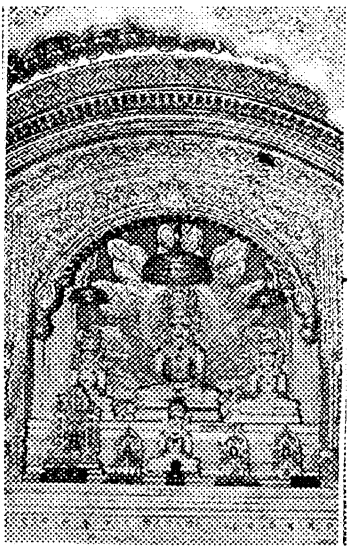

गांव मंदिर : पावापुरी

1698 की पावापुर गाँव की मंदिर की प्रशस्ति में इस जाति को भरत चक्रवर्ती के मंत्री श्रीदल के संतानीय बताया गया है। नालंदा में पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन और राजगृह में दो हजार वर्ष प्राचीन प्रतिमाएं मिली है। पावापुरी में पहले प्राचीन ईंटों का बनाया हुआ मंदिर था जो दो से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व का था। इसकी ईंट को ले जाकर परीक्षा करके यह प्रामाणित किया गया है। पावापुरी के निकट अनेक छोटे-छोटे गाँवों में जैन प्रतिमाएं यत्र-तत्र बिख़री हुई पड़ी है। महत्तियाणों के अतिरिक्त यहाँ सराक जाति के प्राचीन श्रावक भी रहते थे।

पावा और पुरी दो छोटे गाँव थे। पुरी में गाँव मंदिर है तथा बाहर जल मंदिर है और पावा के सामने ही प्राचीन समवसरण है। उस स्थान

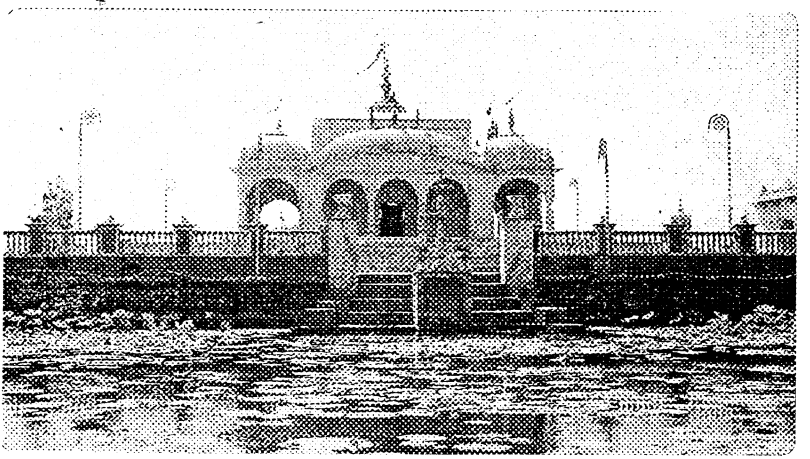

जल मंदिर : पावापुरी

पर एक प्राचीन स्तूप और कुंआ आज भी देखा जा सकता है। जिनप्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में पावापुरी के विषय में लिखा है— "यहाँ आज भी नागकुमार साँप के रूप में प्रभाव दिखाते हैं। जहाँ अमावस्या की रात्रि को तेल रहित जल से भरे हुए दीपक जलते हैं। आगे लिखते हैं कि इस नगरी में कार्तिक अमावस्या की रात्रि में भगवान के निर्वाण

स्थान पर मिथ्यादृष्टि लोग भी वीर स्तूप स्थान पर स्थापित नागमण्डप में आज भी चातुर्वाणिक लोग यात्रा महोत्सव करते हैं उसी एक रात्रि में देवानुभाव से कुएँ से लाए हुए जल से पूर्ण सराव में तेल बिना दीपक प्रज्वलित होता है।"

पावापुरी का गाँव मंदिर भगवान का निर्वाण स्थान है। यहाँ के मंदिर को देखने से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्राचीन मंदिर के ऊपर ही नये मंदिर का निर्माण हुआ है। कवि विवेकहंस रचित श्री वर्द्धन सूरि चौपाई की रचना जो संवत् 1489 में लिखी गई है उसमें जौनपुर के ठाकुर जिनुदास (महत्तियाण) द्वारा श्रीजिन वर्द्धनसूरिजी को गुजरात से बुलाकर पाँच वर्ष पर्यन्त पूरब देश में विहार कराने का विवरण मिलता है। इस अरसे में उपधान, प्रतिष्ठा, आदि अनेकों धर्मकृत्य हुए। सम्वत् 1467 में राजगृहादि यात्रार्थ विशाल संघ निकला जिसमें 52 संघपति थे। चार हजार पालकियाँ और घोड़े, बैल की संख्या अपार थी। निम्नोक्त गाथा में पावापुरी यात्रा का उल्लेख द्रष्टव्य है—

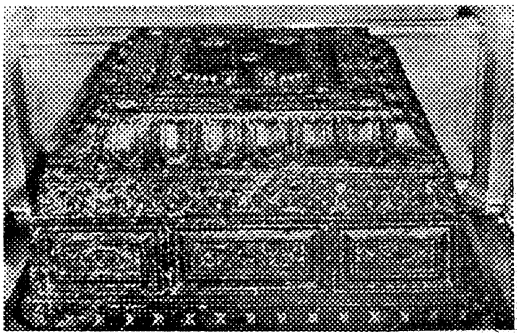

महावीर स्वामी के चरण : गांव मंदिर पावापुरी

पावापुरि नालिंदा गामि, कुंडगामि कायंदी ठामि।
वीर जिणेसर नयर विहारि, जिणवर वन्दइ सवि विस्तारि।।

सन् 1565 ई. में कमल ग्रन्थ कृत चतुर्विंशन्ति जिन तीर्थमाला में नालन्दा बड़गांव में 16 जिनमंदिरों के होने का उल्लेख मिलता है। सन् 1609 ई. में पुण्यसागर लिखित सम्मेद शिखर तीर्थमाला में

राहगृह पावापुरी तथा नालन्दा के वर्णन के बाद बिहार शरीफ में 58 प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है तथा यहाँ पर महत्ति यांण वंशी श्रावकों की एक बड़ी बस्ती थी इसका भी प्रमाण मिलता है।

--महातीर्थ पावापुरी- भंवरलाल नाहटा

सन् 1661 में आगरा के हीरानंद मुकीम ने सम्मेतशिखर का संघ निकाला था जिसका वर्णन वीर विजय कृत चैत्य परिपाटी में मिलता है। इस संघ के साथ प्रसिद्ध कवि बनारसी दास जी भी थे, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने अर्ध कथानक में किया है।

संघदास रचित वसुदेव हिंडी नामक जैन कथा साहित्य प्राचीन इतिहास के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को परिलक्षित करता है। कृष्ण के पिता वसुदेव अपूर्व सुन्दर थे उनके रूप पर स्त्रियां मुग्ध हो जाती थी अतः उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिये गृह बंदी बना लिया गया। वसुदेव बंदी गृह से निकल गये और विभिन्न देशों में भ्रमण करते हुए वहाँ की श्रेष्ठ सुन्दरियों और राज्य कन्याओं से विवाह किया। एक बार राजा कपिल के पुत्र अंशुमन जो उनका साला भी था वह उनको मलयदेश ले जाना चाहा लेकिन रास्ता भूल जाने के कारण वे विपरीत दिशा में चले गये और पुण्ड्र राजा की राजधानी में पहुँच गये। राजा पुण्ड्र के पिता का नाम सुशेन था जिन्होंने पुण्ड्र को सिंहासन देकर सत्य रक्षित नामक मुनि से निर्ग्रन्थ धर्म में दीक्षा ली। रानी वसुमति ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की और आर्या संघ की नेत्री बन गयी। राजा पुण्ड्र के पहले कोई सन्तान नहीं थी परन्तु बाद में एक कन्या का जन्म हुआ जिसे पुत्र बताकर प्रचार किया। एक उत्सव में वसुदेव का उससे परिचय हुआ जो आगे चलकर विवाह बन्धन में परिणित हो गया और इन्हीं की सन्तान महापुण्ड्र के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ के लोगों के विषय में कथानक में लिखा है कि यहाँ के श्रेष्ठीगण व्यापार के लिये सुदूर विदेशों में जाते थे। स्थलपथ से ताम्रलिप्त जाते और वहाँ से समुद्री

यात्रा करते थे। लेखक के वर्णन से इस शहर के विषय में काफी जानकारी मिलती है। जिसके अनुसार यह शहर मगध के दक्षिण में तथा गया के विपरीत दिशा में था और ताम्र लिप्त और मगध दोनों स्थानों से स्थल पथ द्वारा युक्त अर्थात् राज्यगृह और ताम्रलिप्त को मिलाने वाले वाणिज्य पथ पर अवस्थित एक महत्वपूर्ण वाणिज्य केन्द्र था।

राजा पुण्ड्र के पिता सुशेन और माँ वसुमती का निर्ग्रन्थ धर्म दीक्षा लेना यह प्रमाणित करता है कि यह श्रमण संस्कृति का प्रभावित अंचल था। इस राज्य से सम्मेत शिखर अधिक दूर नहीं था।

राजा पुण्ड्र के बाद उनका दोहित्र यहाँ का राजा बना और वह भी वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पाण्ड्रा गाँव में इस वासुदेव के स्मारक चिन्ह आज भी वर्तमान है। यहाँ एक ध्वन्सावशेष है जो वसुदेव के स्थान के नाम से जाना जाता है। इस सन्दर्भ में श्री हरिप्रसाद तिवारी और नृसिंह प्रसाद तिवारी की गवेषणा महत्वपूर्ण है जिसके अनुसार—

आर्कियोलॉजिकल सर्वे की डड्ढद्रदृद्धद्य से यह स्पष्ट होता है कि ताम्रलिप्त से पाटलीपुत्र के पथ पर एक प्राचीन वाणिज्य केन्द्र जिसका नाम पाण्ड्रा (जिला धनवाद) है। प्राचीन पुण्ड्र राजा और उनके दौहित्र महापुण्ड्र की स्मृति से जुड़े प्राचीन नगर का ही अवशेष है यह पाण्ड्रा। पाण्ड्रा बराकर शहर से प्रायः 7 मील पश्चिम में स्वनाम से आज भी विख्यात है। पाण्ड्रा केवल एक बड़ा (धनवाद जिले का सबसे बड़ा) ग्राम ही नहीं यह एक परगने का सदर भी है। वर्त्तमान काल की दलीलों में भी परगना के रूप में पाण्ड्रा का उल्लेख किया जाता है। बराकर से धनबाद तक बराकर और दामोदर नदी का मध्यवर्त्ती भू-भाग पाण्ड्रा परगना के अन्तर्गत है। अंग्रेज शासनकाल

के प्रारम्भ में यहाँ के प्राचीन मल्लराज वंश को खदेड़कर घाटवाल राजवंशियों ने यहाँ अंग्रेजों के करद राजवंशों की स्थापना की। इन घाटवाल राजवंशियों को आज भी राजा कहा जाता है एवं इनके बहुत से परिवार इस अंचल में निवास करते हैं। घाटवाल का अर्थ है--घाट अर्थात् पार्वत्य पथ रक्षाकारी। इस सम्प्रदाय पर बहुत प्राचीनकाल से ही इस ताम्रलिप्त मगध की संयोगकारी वाणिज्य-पथ की सुरक्षा का दायित्व था। इस अंचल के बंगाली वणिकों की एक पदवी घाँटी या घाटी है जो इस पार्वत्य वाणिज्य पथ के वाणिज्य केन्द्र से उद्भूत है। पाण्ड्रा गाँव लोक संख्या एवं आयतन दोनों ही दृष्टि से इस अंचल का सबसे बड़ा गाँव है और अकेला ही एक पंचायत है। गाँव का रास्ता आधुनिक नगरों की तरह परिकल्पित है।

बसुदेव हिण्डी में राजा पुण्ड्र और समग्र राज परिवार को जैन धर्म के पृष्ठपोषक रूप में वर्णन करने से स्वभावतः ही लगता है कि पुण्ड्र राजा की यह राजधानी प्राचीन जैन अध्युषित अंचल में थी।

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि पुण्ड्रा का अवस्थान ताम्रलिप्त से 100 मील उत्तर-पश्चिम में (45°) है, ह्वेनसांग ताम्रलिप्त से छः सौ ली अर्थात् एक सौ मील उत्तर-पश्चिम में किलिना-सुफलाना या कर्ण-सुवर्ण गए थे। **आर्या मंजुश्री मूलकल्प** के मत से पुण्ड्रवर्धन में शशांक की राजधानी थी। यही पाण्ड्रा मंजुश्री मूलकल्प वर्णित पुण्ड्रा नगरी है। कृष्ण मिश्र के **प्रबोध चन्द्रोदय** नाटक में जो राढ़ देश की अपरूपा रढ़ापुरी की बात आती है वह भी सम्भवतया यहीं पाण्ड्रा या पॉरड़ा (पाँड़रा) को ही निर्देश करती है। इसी पाण्ड्रा परगना से वर्द्धमान पर्यन्त अंचल को शायद पुण्ड्र वर्द्धमान अंचल कहा जाता था।

यहाँ चारों ओर प्राचीन स्तूप, मूर्ति, मन्दिर के भग्नावशेष और ध्वंस स्तूपों का समाहार है। वासुदेव स्थान और कपिलेश्वर मन्दिर का विशालत्व दर्शनीय है। मन्दिर का प्रांगण समतल से प्रायः बीस फुट

ऊँचा है। चारों पार्श्व प्राचीरों से घिरे हुए है। विशाल प्रांगण में छः विशाल प्रस्तर निर्मित मन्दिर वर्त्तमान है। इस पाण्ड्रा परगना की पूर्वी सीमा में है पश्चिम बंग की श्रेष्ठ पूराकीर्ति बराकर के सिद्धेश्वरी के मन्दिर आदि। पूर्वोत्तर कोण में है कल्याणेश्वरी का प्रसिद्ध (माँ का स्थान) माइथन, दक्षिण में है तेलकम्प के प्रसिद्ध मन्दिर।

प्राग् ऐतिहासिक काल से मगध श्रमण संस्कृति का प्रधान केन्द्र था। यहाँ का चप्पा-चप्पा तीर्थंकरों के चरणों से पवित्र था। यहीं पर तीर्थंकरों तथा मुनियों ने प्रवज्या ग्रहण की, केवलज्ञान और निर्वाण प्राप्त किया था। श्री हीरालालजी दूगड़ ने लिखा है— "मगधदेश का जैनधर्म और जैनसंस्कृति के साथ अत्यन्त प्राचीन काल से ही अटूट घनिष्ठ संबंध है। मगध का अस्तित्व और उसका इतिहास, उसकी संस्कृति, श्रमणपरंपरा, अर्द्धमागधी प्राकृतआगम, साहित्यपंचागी, जैनधर्म के स्थापत्य और इतिहास के अभिन्न अंग हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मगध ने यदि जैनधर्म को पोषण दिया है और उसका वर्त्तमान इतिहास दिया है तो जैनधर्म ने भी मगध को सर्वतोमुखी उत्कर्ष साधन दिया है और उसे विश्वविश्रुत बना दिया है।"

क्रमशः

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B JAIN JEWELLERS Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 017
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

THITTHAYARA
Vol XXXIV No.01
25th April 2010

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria
Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225